

# आर्ष विज्ञान

(स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के छद्म निबन्ध)



33

लेखक

स्व० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

सम्पादक

डॉ० शिवमोहन मिश्र

अनुवादक

डॉ० सुनील कान्त तिवारी



विज्ञान परिषद् प्रयाग

## विषय सूची

1. आधुनिक मानव पर विज्ञान का प्रभाव	1
2. प्राचीन भारत में विज्ञान	21
3. प्राचीन भारत की वैज्ञानिक भाषणा	43
4. प्राचीन भारत में परिवर्तनकारी संकल्पना	59
5. प्राचीन भारत में औद्योगी और उपकरणों का युग	74
6. भारत में प्राचीन सामाजिक जीवन	86

## प्रकाशकीय

वैदिक साहित्य में विज्ञान का विपुल भण्डार है जिसका उद्घाटन समय-कालक पर होता रहा है। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जब गिरे-बुने विद्वानों में से हैं जिन्होंने प्राचीन भारत के वैज्ञानिक राष्ट्रमय पर प्रकाश डाला। एक रसायन-वेत्ता होते हुए भी उन्होंने केरी का आकलन आसपास करके वास्तुनिक विज्ञान के परिदृश्य में वेरी में आये विज्ञान विषयक ग्रंथों की समीक्षापूर्ण व्याख्या की है।

आर्य साहित्य के प्रति स्वामी सत्यप्रकाश की रुचि आरम्भ के ही रही है। 1950-52 में उन्होंने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद में कुछ व्याख्यान दिये थे, जिसका प्रकाशन 1954 में 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' के रूप में हुआ। इसके पश्चात् 1960 में 'प्राचीन भारत में रसायन का विकास' का प्रकाशन हिन्दी समिति सचनर के द्वारा और *Founders of Science in India* (1966) तथा *A critical Study of Brahama Gupta and his works* (1968) नामक ग्रन्थ दो छपीं का प्रकाशन विनी के Research Institute of Ancient Scientific Studies के द्वारा। उपरन्वात् सोसायन तथा आनन्दराव के 'सुखसुख' एवं 'बकाली वैदुषिक्य' का प्रकाशन डॉ एन-कुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद (1979) के द्वारा। इन चारों छपीं में स्वामी सत्यप्रकाश के गहन स्वाध्याय की अभिव्यक्ति हुई है।

उपर्युक्त छपीं के प्रकाशन के अतिरिक्त स्वामी सत्यप्रकाश ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष पर के अवकाश प्राप्त करने के बाद आर्य समाज की प्रति प्रदान करने के उद्देश्य से देह-निर्देश का आनन्द प्रमथ किया और विश्वविद्यालयों तथा अन्य केन्द्रों में अनेक व्याख्यान दिये। वे सभी व्याख्यान अर्थात् भाषा में दिये गये जो पुस्तककार रूप में छन चुके हैं किन्तु हिन्दी पाठकों के लिए विज्ञान विषयक उनके कुछ महत्वपूर्ण व्याख्यान उपलब्ध नहीं हैं। अतः उनमें से छः व्याख्यानों को अनुचित करके प्रस्तुत किया जा रहा है। ये विषय स्वामी जी की परिचित वैज्ञानिक विचारधारा का प्रति-निधित्व करते हैं।

सर्वांग स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती की अवसत कुछ वर्षों के अवसर पर यह सब संग्रह प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। वाता है इससे विद्वानों के लिए अधिक एवं वेलादायक कामकी प्राप्त हो गयी।

## भूमिका

सत्यप्रकाश जी का जन्म 24 अप्रैल 1905 को हुआ और के सीपीएम प्राप्त कर 18 अक्टूबर 1993 को दिवंगत हुए। प्रभाव उनकी कर्मभूमि तथा कर्मभूमि रहा। उन्होंने रसायन विज्ञान में सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त की और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लगभग 37 वर्षों तक अध्यापन एवं सीख-निर्देशन करी रहे। 1971 में उन्होंने संस्थापक रहन किया और अन्तिम वर्षों तक सारी समाज के कार्य में जी-जान से लगे रहे।

वे सम्प्रदाय सारी समाजी थे। अपने विद्यार्थी जीवन के ही उन्हें वैदिक साहित्य में रुचि की शुरुआत: विद्यार्थी जीवन में लेकर संस्थापक बनने तक जी सम्पूर्ण विज्ञान, मनन एवं स्वाध्याय किया उनकी का प्रतिफल था कि उन्हें विज्ञान के साथ ही सर्वज्ञ (अध्यात्म) में पहुँची रुचि करी रही। वे एक स्वाध्यायिनी होने के साथ वेदों के भी अध्ययन एवं अनुसंधान करने। वैदिक साहित्य में अन्तर्गत भी विज्ञान था, और इस सम्बन्ध में विदेशी विद्वानों ने जो कुछ लिखा उसके विषय में वे लगातार विचार-समन्वय करते रहे। अन्तस्मय में एक निश्चित निर्वचन पर पहुँचे कि वैदिक, अस्तित्व, रसायन तथा वायुवीर के क्षेत्र में भारत की अत्यन्तविश्वी अतीत बहुवर्ण है। उन्होंने अन्तस्मय के लेकर सीखद्वारा करी तक भारत के हुई वैज्ञानिक उपलब्धि की व्याख्या के लिए कई बहुवर्णों प्रत्य लिखे। इनमें के निम्नलिखित बहुवर्ण हैं—

1. वैज्ञानिक विज्ञान की भारतीय परम्परा 1934
2. प्राचीन भारत में रसायन का विकास 1960
3. Founders of Science in Ancient India 1965 (Two parts)
4. A Critical study of Brahmagupta and his works 1968
5. The Bakhaali Manuscript 1979
6. The Sutra Sutra 1979
7. Coinage in Ancient India 1986.

अपने विदेश प्रवास के समय स्थायीजी ने इन्हीं में डॉ॰ सी.डी. के मैट की जिन्होंने प्राप्त सम्प्रदायों के संदर्भ में और ही वैज्ञानिक उपलब्धियों पर

महानुपूर्व संघ निर्या है। समस्त स्वामी जी ने विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय उपनिषदों का पुनर्जागरण किया और इसकी सचिवालयित उद्यम अनेक भाषणों में हुई जो उन्होंने देश तथा विदेशों में 1970-1975 की अवधि में किये।

अस्तुत निम्न संघ "आर्य विज्ञान" में स्वामी जी के उद्यम उद्यम महानुपूर्व भाषणों का हिन्दी अनुवाद संकलित किया गया है जो उन्होंने स्वयंसेवक हिन्दू विज्ञान-विज्ञान में तथा अपनी असीम शक्ति के दौरान किये हैं। एक निम्न 1962 में लखनऊ में किये गये भाषण का अनुवाद है। इसका हिन्दी अनुवाद मेरे मित्र डा० सुदीपक सिन्हा के किया है।

इस निम्न के सम्मेलन के पता चला कि स्वामी जी विज्ञान के विस्तृत इतिहास की आवश्यकता का अनुभव करते रहे हैं। उनका यह निश्चित मत है कि बीसवीं शताब्दी तक भारत में विज्ञान के विविध क्षेत्रों में होने वाली प्रगति असाधारण रही है किन्तु उसके साथ विज्ञान की शिक्षा मानी दब गई। जैसे साम्प्रदायिक जमाने में "विज्ञान धर्म" कहा गया वह भारत में एक तरह से अन्ध-कारमय युग का और कभी-कभी कभी के बाद ही वहाँ वैज्ञानिक जागरण का पुनः प्रकाश हुआ।

स्वामी जी हिन्दू धर्म के अनेक शास्त्रों में से वैदिक शास्त्र में जिस तरह के अर्थों का अर्थ साधनिक जीवन में हो रहा था उसका स्पष्टीकरण करते हैं। वे शास्त्रों के अन्तर्गत स्वामिति के विकास का उल्लेख करते हैं। वे अस्तुत के द्वारा अर्थिक तथा अन्य विज्ञान के क्षेत्र में की गई प्रगति का कारणभूत वर्णन करते हैं। वे उस समय उपकरणों, यंत्रों तथा संसाधनों का भी वर्णन करते हैं जो वैदिक साहित्य में उल्लिखित हैं। वे यह मानते हैं कि भारत में शिक्षा के अन्तर्गत तथा शास्त्रों के मानकीकरण पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया किन्तु वे यह साधने की सैवार नहीं है कि आर्य-भारत, महानुपूर्व भाषा ने विस्तृत उपरिष्ठ जाने बिना ही अपने सुव्यक्तिपूर्ण परिणाम प्राप्त किये हैं।

स्वामी जी वेदों में विकासवाद के भी संकेत करते हैं किन्तु वे स्पष्ट कहते हैं कि यह साधन के विकासवाद से भिन्न था।

स्वामी जी विज्ञान तथा वैज्ञानिक की विविधताओं का वर्णन करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि हम या हमसे के बिना कोई भी ज्ञान अर्जित नहीं किया जा सकता। वे विज्ञान और धर्म की भी विवेचना करते हैं और

( १३३ )

समय में कहते हैं कि हमारी जगत्वासी का हम सम्बन्धनीकृत विज्ञान ही समुद्र कर सकता है ।

स्वाधीनी की विशेषता रही है कि वे पुराने विधियों की भी कट्टरता या हठवादिता से दूर रहकर वैज्ञानिक विधि के सभी उपाय ज्ञानों के साधारण पर अधिकतम नियमों देते रहे हैं । अपना मत व्यक्त करते हुए वे आधुनिक वैज्ञानिक जगत्वासी के अपने-अपने पर कल देते हैं । वे न्यूटन, आईंस्टाइन आदि के समर्थों में विज्ञान या दर्शन की प्रशंसा की स्पष्ट करते हैं ।

वे सह विविध वैदिक या आर्य विज्ञान के समकालिक अध्ययन की आवश्यकता की ओर स्पष्ट संकेत हैं । संस्कृत भाषा तथा उसके प्राचीन वाङ्मय का ज्ञान भारतीय विज्ञानियों की अपने प्राचीन साहित्य के समझने में सहायक होना ऐसी हमारी भी धारणा है ।

विमर्शिकम् ।

विमर्शनाथ मिश्र  
सम्पादक



हानीयों तथा जीवन-वृद्धि के रहस्यों पर कार्य के लिए तथा नाइज़ोमस उद्योगों के लिए विख्यात रहे हैं। इस अवधि में दर्शन के नये शास्त्रों तथा क्वांटम-वाणिज्यी, आइन्स्टाइन-बील-कमी-साइरेक सांख्यिकी, तरंगवाणिज्यी तथा आकिकर, साइरेक तथा हाइलेनबर्ग के कार्य की माताशक्तिता रही गई। इसी अवधि में नाथिक लोग तथा और इन विज्ञानकीय प्रविष्टियों में एक के बाद एक बनेक प्राथमिक कर्मों की पड़नाया तथा। प्राचीन जल, कर्मवाणिज्य, कृत्रिम ऐडियोवक्रियता, अट्टियाँ, स्फोटन, अन्तःकातक, हाथियार, देशार, सूत्रन तरीके तथा इसी प्रकार की अन्य चीजें जिनसे भी इनकी की सुमान्यकारी चतनारी यह चुकी है जिनमें कि इन यह रहे हैं। किन्तु यह कहानी यही नहीं समाप्त होती। साक्षर ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा, जिनमें कि मानव इतनी द्वारा वर्तमान युग में कल्प-वस्तु न हुई हो। गणितिक से लेकर संयोजक तक और हेलीकान्दर से लेकर परावर्तनिकी (Superconductors) तक विज्ञान में प्रीघोनिकी के सहयोग से अन्वेष करके रहे हैं। ये वही इनकी किन्तु व्याख्या नहीं करके। ये वर्तमान युग की स्वल्प होने वाले आविष्कारों की बनाकर कार्य की उपाय नहीं करूँगा। ये एक-एक करके कार्य और कल्पना युग, इसी घातुओं के युग, कृत्रिम देशन युग और प्लास्टिक युग के इतिहास पृष्ठों में भी आरंभो नहीं के करके। निम्नानेह इन बारे में हम रोमांचकारी जीवन जीते रहे हैं।

इसी प्रकार की युग-निर्माणक गति हमारे सूत्रन जगत के क्षेत्र में भी हुई है। जीवित कोशिका की कहानी, उत्पत्तिवर्जन का विज्ञान, आनुवंशिक कोश (कूट), आनुवंशिकता के रहस्य और हम ही में कोजी लई केन वारीटिक शिवालों से हमारे सामने कबियों तथा चार्निकों द्वारा कल्पित अधिक अद्भुत चित्र प्रस्तुत किया है। इन इनके पूर्व अकल्पनीय सूत्रनविमाओं की ओर बढ़े हैं। एक और गुरुय नाइज़ोमिलीकस जितनी भाषा के कार्य करता है वही दूसरी ओर ऐसी चित्र चित्रों की बातें करता है जिनमें वह एक सेकण्ड के दस लाखों भाग में निश्चितता के साथ व्यवहार में ला सकता है।

इन न केवल अपनी प्रीघोनिकी में अपितु कृत्रिम और स्वाभाविक विज्ञान में भी आने बढ़े हैं। गुरुय ने सूत्र, बुझाया, रोज, कण्ट और मूल्य पर विचार वाले की कोशिका की है। अब ही सामाजिक कोशाचार, नीतिशास्त्र, व्यक्ति तथा सामाजिक ऐकिकता की नई व्याख्या उपायन तथा चित्रन एवं ऐसी ही अन्य समस्याओं के साथ जोड़ कर की जा रही है। आज गुरुय स्वाभाविक शक्ति की



अपेक्षा एक संरक्षित समाज के घटक के रूप में अधिक बहुमुखी हो गया है। हम अतिरिक्त अपने लिए सभी सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक गुणों के नवीन गुणांकन की खोज कर रहे हैं। औद्योगिकी और बड़े-बड़े उद्योग, विपुल उत्पादन तथा ऐसे क्षेत्रों के उत्तर उपक्रम जो पहले एक-एक व्यक्ति या छोटे समूहों के लिए सुरक्षित थे, उन्होंने हमारी अनेक समस्याओं हल कर दी है। किन्तु हमी के साथ इसका दूसरा पक्ष भी है। इस नवीन संसार वा कि एक-संसार की बचक-बचक के बीच दूर दस्तु इसी समय नहीं है जिसकी कि लगती है, उसी वास्तविक नहीं जिसकी कि जाता थी, न ही उसी जगताह्वर्त्तक है जिसकी होनी चाहिए थी।

मेरे आपने देश में निम्नलिखित को माह में यह रहा है तथा यह केरा पहला भ्रमण है किन्तु अवधारणीय भी है। फिर भी मैंने इस देश और वहाँ के लोगों की कुछ जलेश्वरीय बातें देखी है। आपने अपने देश की विदेशी जालन के मुक्त करने हेतु की संघर्ष किया है, उसकी मैं ज्ञाता करता हूँ। मैं यह भी अनुकूल-गुर्नक अवलोकन कर रहा हूँ कि राष्ट्र-निर्माण की योजना की लेकर जाने करने का आप में संकल्प है। अभी 10 या 12 वर्ष हुए हैं जब आपने गुलामी का कुर्षा उखाड़ रखा। मैं उस देश में जाता हूँ जो पहले एक अतिरिक्तानी राष्ट्र था। जब मैं ऐसा करता हूँ तो मेरा आकाश उसके सुदूर वर्तीत के है। यह मान्य उस समय की कहानी है जब संसार इसका बड़ा नहीं था। हमारे पास मान्यता का एक छोटा समुदाय था जब सम्पदा का उदय मेरे देश में हुआ। संस्कृति और शक्ति के दृष्ट के रूप में हम भारतीयों ने अतिरिक्त परिवर्ष किया और छोटे-छोटे हम सुदूर देशों में फैल गये। सब से अनेक देश जगता में जाते और उन्होंने अपना समाज विकसित किया। उनके पास अपने दुन का विज्ञान था, उन्होंने अपने लिए अनेक क्रियाविधिओं की तकनीकों और अतिरिक्तनीकों की खोज की। औद्योगिक परिणीमाओं के विषय होकर उन्होंने अपने लिए जाता, जगता और स्वाभाव की कुछ निश्चित सीधियाँ विकसित कीं। हात ही मैं मैं आपने कुछ संवहायकों में गया जिसमें आप लोगों ने अपने पुरादलिहाम, भित्तिविष, विष और वेदपुरा, उद्योग और वातवरणा तथा कुछ के हविषारों को सुरक्षित कर रखा है। मैंने जो-जो चीजों द्वारा अपने जाने के सम्पर्क में मिले गये वस्तुओं और प्रजाती की पढ़ा, जिसमें उन्होंने इस माह का जाता किया है कि सर्वप्रथम गुर्नकृत मनुष्य केसा-संजायिता की सीधा के जात-जात नहीं उत्पन्न हुआ था। आपने

कानून खोजने में पाये जाने वाले प्रागैतिहासिक काल के विज्ञान चीजों के संकलन वहाँ के विभिन्न कलाओं के प्राकृतिक इतिहास के निर्माण में काफी महत्वपूर्ण हैं।

वेज्जा और अन्य नुकीं खोजों की वस्तुओं को राज्य की प्रतिनिधियों में, विशेषकर उच्च वैज्ञानिक विभाग में, हार्द बेटीले देखकर सम्पीक होता है। खोजीक इतिहास की लेनी के बनने जा रहे हैं। मैंने आपके अपने संस्थानों, विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं तथा तकनीकी संस्थानों की देखा है। आपने देश में कई फैसले पर कृति होती है। आप अपने उद्योगों और कृति के लिए आधुनिक विधियों की आसानी के प्रयुक्त कर सकते हैं। आपकी साम यह है कि आपने आदिम जैसी संस्कृति के प्रयोग बार बार छोड़े आधुनिक तकनीकों की उपयोग है और आपकी उन चीज की सीढ़ियों की बार वहाँ करता पड़ा जिन्हें विकसित तथा अर्द्धविकसित राष्ट्रीय की ले करता पड़ा है। उदाहरण के लिए, आप को 10-15 साल पहले सम्पत्ती और अन्य सम्पत्ती की महत्वता में ले हुए सम्पत्ती चीजों दिखाते हैं। लेकिन अब आप साइकिल, मोटरसाइकिल, ट्रक, बस और कारों का उपयोग कर रहे हैं। कलाकारों के प्रयोग करने की कुछ की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति की है आप उल्ला आनन्द उठा रहे हैं और छोटे-छोटे इन बारे कार्यकारणों में आप सक्रिय भागी बन जायेंगे। मैंने आपने विश्वविद्यालय में देखा कि किस तरह के उच्च विज्ञान संकाय में कलाकारों पर विभाग गुप्त हो रहे हैं। अब हम आपको अपने-अपने वैज्ञानिक संस्थानों और उन स्थानों के प्रयोग में जहाँ वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग (प्रयोग, सुरक्षण, कार्यकारण, ईंधन और ऊर्जा संग्रह) होता है, लगे देखते हैं तो हमारा मन प्रयुक्त हो सकता है तथा आपकी समस्त और तीव्र विकास की प्रगति के प्रति प्रयत्नभाव उत्पन्न होता है। मैंने इस बात की भी प्रसन्नता है कि आप इतने कम समय में विश्व कार्यकारणों के अर्द्ध भागीदार बन चुके हैं। यदि आपकी साम की वस्तु है तो हम कह सकते हैं कि यह आपके देश में है। लेकिन आपकी एक बात बार रखनी है कि विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्योग और कृति ने आपने की कुछ भी पाया है यह आपका नहीं है। यह उन बाहरी लोगों के परिश्रम का फल है जिन्होंने इस कार्य के लिए अपने की समर्पित कर दिया है और जिन्होंने बड़ी-बड़ी विज्ञान की चीज रखी है। आपकी सभी राष्ट्रीय महत्वा-की-काओं के लिए मेरा सम्मानार्थी।

आधुनिक काग में कोई भी राष्ट्र मित्रता की चेष्टा नहीं कर सका । जर्मन, कलिन अम तथा समुदायपूर्ण मित्रता का अनुशीलन होता है । हर देश के एक सुदृढ़ वैज्ञानिक नीति होती चाहिए । तीन की साथ रहते जब हमीक में 'राज्य सोसाइटी' की नींव रखी जा रही थी तो वैज्ञानिकों की उनकी विमलता । कारण उनकी प्राची माना जाता था तथा कोई भी उन्हें सम्पीछा से नहीं ला था । कोई उनकी विमता भी नहीं करता था । कुछ परजनविर्ता, बीकर और नमानक, कुम्भक, मेम्भ, सम्मान सुधमनी अमना दुरधनी, दुता-मकील और कर की नमी—यही उनके आस-पास की सम्पूर्ण सम्पत्ति थी जिसमें सब से लेकर छोटा बीम्बा सेम और कुछ शर भी कुछ पड़े । छोटे-छोटे उद्योगों से कुछ 'स्वर्ण काँच' के उपकरण बनाये और जब गैस उपकरण हो गयी तो उन्होंने अपने नीर की खोज कर ली और निरुध सेम की दृष्टि दिया । उनकी प्रयोगशाला के 'हो उपकरण' के । जब वैज्ञानिकता अनुर्व अनुर्वों के विषय में आई करते में से के जो स्वर्ण से और अरुध से सम्पन्नित थी तो यह समुद्र महावहीन छोटे-छोटे प्रेक्षण करता रहा । ये एक उपकरण हुआ । उन्हें एक अति सामान्य अनुभव हुआ कि जब पान दुनुता हो जाता है तो गैस का आवरण पटककर बाहर ले जाता है और जब पान बढ़ता जाता है तो गैस का आवरण आराम के अनुसार बढ़ता है । बमिल, चास्सी, वेल्ड्रेक, बास्तेन द्वारा किये गये इस प्रेक्षण के पैली में सम्पूर्ण बलिबी की आकारविम्भा रखी गयी और अन्त में इसके अनु तथा प्रमाण मित्रता की नींव पड़ी । यह अतीव प्राणीय अमना कुवानी अनु विज्ञानियों के अतीव से सर्वथा विमल था । रायमारी, राजमारी, आयननमारी तथा 1 से 0.1% तक कुछ मात्र देने वाली सामान्य रासायनिक गुता से दूरगामी परिणाम निकले । सभी विज्ञान पर नया अमानवार का उदय हुआ हो । पुराने लई, जो यूरोप से बुनिक की ज्वाबिती, पीटी और कुकराह के रतीव और भारत में बीरुध के 'माल' रतीव के रूप में अपनी पराकाष्ठा प्राप्त कर चुके थे, अब के साथ तक पहुँचने के एकमात्र साधन नहीं रह गये । बेकन और अन्य लोगों तथा प्रसुत प्रायोगिक और जलननात्मक तक के ज्ञान की नयी कीचिरी बीम में । पुराने वैज्ञानिक विचारों के विपरीत यह नयी वैज्ञानिक ज्वाली बीरुध या गैरिक बहकाओं की खोजबीन में दिन-रतिदिन अधिक विश्ववनीय तथा तथा दूरगामी परिणाम देने वाली बन गई ।

अभी लगभग दस 'साथ रहते (1961) में मन्दन की 'राज्य सोसाइटी' २ विज्ञानादर्ति-ज्वालीन में अभिलिखित उल्लेख था । अब से तीन ही साल पहले

इसकी वेटमें किसी छोटे कोरे में किसी ऐसे लोहे के बार होती थी जो प्रतिध्वनियों को ध्वन दिया करते । प्रतिध्वनियों की संख्या भी कम थी । यूरोप के महाहीन में हमने कई केन्द्रों पर ऐसी ही आनककता देखी । जर्मनी तथा स्वीडन की प्रयोग-शालाओं में कुछ पुरानी परम्पराएँ मिलीं । कश्मिरी ईसाइयत की सीखी मुन्नेक प्रतिकारी लम्बों के हुईं । पारम्परिक दर्शन नई कार्य प्रवृत्ति द्वारा प्रतिकारित हो रहा था । प्रारम्भ में तो वैज्ञानिकों का सवाक सदाका काटा था, जहाँ उनकी ओर ऐसी साधारण में विमल शानसे नज़र माना जाता था । लेकिन इससे विज्ञान के क्षेत्र के विनीत कार्यकर्ता, वैद्यक एवं प्रयोगकर्ता विचलित नहीं हुए । जो पहले सांस्कृतिक दर्शन कहा जाता था धीरे-धीरे वही विज्ञान कहा जाने लगा ।

विज्ञान शब्द का अर्थ है ज्ञान या ज्ञान की विषय कर एक प्रवृत्ति बन गया है । पुरानी समझबूझ में सात भौतिक विज्ञान थे—व्याकरण, कर्मकार, लई, संकीर्ण, ज्योतिष, वैद्याधीन और अंकरणित और सात ऐसी विज्ञानों के अन्तर्गत पारंपरिक वायुन, ईसाई वायुन, पारम्परिक अदालत, धर्मिजन अन्तर्गत, कट्टरवादी अन्तर्गत, एतन्तर्गत अन्तर्गत और साधारण अन्तर्गत । यूरोप में सीमा का यह विचार था कि पुराने जीव (या तो पुरानी धार्मिक समझ और टैटामेन्ट के लेखक) ही सारे ज्ञान के परिचित थे । वे अपनी धर्मस्थितियों को इन लिखित बातों का ध्यान करने के लिए कहते थे या पुरानी ज्ञान कही गयी उन बातों की व्याख्या की जाती थी जो सर्वविश्व थीं । आनक-कोई और वैज्ञानिक विभवविज्ञानों की स्थापना ऐसी लम्बों की आवश्यक करने और ऐसी उपदेशों (इन्जिल) का प्रसार करने के लिए की गयी । इस प्रकार प्रारम्भ में सारे यूरोप में विश्वविज्ञानय कट्टर विचारधाराओं के केन्द्र थे तथा इनका उद्देश्य केवल अन्तर्गत की शिक्षा देना था । नई पुन या 'विज्ञान पुन' के जाने के बाद ही धार्मिक विज्ञानों की सम्मता दी गई जिससे वैज्ञानिक और मातृशोध ज्ञान के हर क्षेत्र में जाने हैं । विज्ञान सभी प्रकार की कश्मियों, पूर्वावृत्त तथा वर्तमानों के सहने के लिए है । यूरोप में इसे अन्तर्गत के नाम पर लीने अन्तर्विज्ञान और कट्टरता के विरुद्ध लड़ना पड़ा । ज्ञान मानते ही हैं कि अन्तर्विज्ञान कठिनाई से सम्पन्न होते हैं तथा प्रकृति में छिपे सत्तों को उद्घाटित करने के लिए विज्ञान की अन्त के रूप में स्वीकार करने में काफी समय लग गया । कई बार विज्ञान की कर्म से विरुद्ध हुई । वैज्ञानिकों की कई बार सांस्कृतिक अपार दिया गया । उदाहरणार्थ, जब पुष्पी को बंद की तरफ़ माना गया (य कि पण्डे पित्र के रूप में), जब पुष्पी को सूर्य के चारों ओर घूमना बताया गया

(न कि पूर्व की दुन्नी का पक्कर लगाने में), जब सीढ़ी की पुरची के बराबर रक्तप्रवाह देने की बात की गयी (न कि शायद वे ली गयी पुरची से उलझ) तथा जब प्रसव के समय महिलाओं को होने वाले दर्द से खुदकारा देने के लिए संवेदन-शून्य करने वाली दवाओं की खोज की गयी (जिस आदेश के विरुद्ध कि महिला को प्रसव पीड़ा भोगनी होगी)। इसका परम विन्दु तो तब पहुँचा जब महिलाओं की उत्पत्ति से सम्बन्धित उद्बिकास का विद्वान्त प्रस्तुत किया गया।

विरहावर काव्यविस्वासी के चित्तके रहे, कई बार उन्होंने वैज्ञानिक विधियों के खोजे कहे होठूक सत्वों के साथ समझौता भी करने की दुरदृष्टि की। काव्यविम के सत्वों की व्याख्या तबों और कारणों के अनुकूल बनाने के लिए बलव भी गयी। वैज्ञानिक अपने विपक्ष डंग से लड़ने की खोज की गई विधियों को निरस्त कर रहे को दुहराने वाले वाले सामान्य प्रयोगों और प्रेक्षकों पर आधारित थी। रसायन के क्षेत्र में औद्योगिक विचारों के वैज्ञानिक कड़े-जड़े रसायनों का संश्लेषण कर सके और कार्बनिक पदार्थों की संरचना स्थापित कर सके। संश्लेषित जीव से प्राकृतिक जीव को बाजार से बाहर कर दिया। अकार्बनिक पदार्थों से पोषक द्वारा पुरिफा के संश्लेषण से कार्बनिक और अकार्बनिक जीविकों के बीच की विभेदता को समाप्त कर दिया। एन्टीबायोटिक और अन्य दवाओं ने हमारे पुराने विचारों में झलित ला दी।

वैज्ञानिक गुप्त की विवेकता है पुराने परिचित पारिभाषिक दमनों को साक्षात्कार नाम देना। मूठन की पात्रिकी से जन्म, रसाय और संवेग की साक्षात्कार कव विज्ञा। भारऽलवरन—रस, भारऽवेग—संवेग, संवेगऽवेग (या कुछरे सत्वों में कलऽदुरी है) —कार्ब या लवरी है। बाज के परिभाषार्थ हमारे लिए इसकी लम्प है पर जिसने की सर्वप्रथम के परिभाषार्थ दी होकी बहु निश्चित कन से जेरित स्थिति रहा होना। मूठन के गुप्तसाकार्य नियम की सुन्दरता उनके सविहीन सुषम में तथा आदम्पटाइन के सानेकता सिद्धान्त की सुन्दरता की इसी में है। यह साक्षात्कार कल्पना का साक्षात्कार सृजन है जो मूठन तथा विस्तृत खीज में प्रयोग किये जा सकते थे। यह पुरानी विचारधाराओं पर वैज्ञानिक दर्शन की विषय की जिसे वास्तविक संसार में स्थापित किया जा सकता था।

विज्ञान की अन्धविश्वासों तथा पुराणत्वों के सङ्का वा। सन्द वा सन्दवा हर प्रकार के देश के लोगों में कुछ न कुछ अन्धविश्वास होते हैं। हर गुप्त का सन्दवा अन्धविश्वास है। वे अन्धविश्वास किसी देश की जीवनशैली की नीचे माने

वाले हैं। ये बड़ी कठिनाई के होते हैं तथा एक पीढ़ी से दूसरी में स्थापत्य पित होते हैं। ये उन गहन परिणामों पर आधारित होते हैं जिनके वास्तविक कारण को लोग न भी समझते। एक अन्धविश्वासी विचार पुरुर और स्वाधीनों द्वारा बिदे गने जीवन के प्रति कहनुबोल होता है। मैं कुछ अन्धविश्वासी के बारे में बताऊँगा जो हमारे समाज में बरम्बरों द्वारा चले आ रहे हैं। ये हैं—जादू और होना, कौटिल्य, हस्तरेखा विज्ञान, संक विज्ञान, कान्ते और बुरे मनुष्य आदि। ये हमारे आधुनिक समाज के लिए अधिमान हैं। इनमें से बहुत से अन्ध-विश्वासी हमारे भ्रमण और भविष्य की आशाओं के कारण होते हैं। हमारे भविष्य को निश्चित करने वाले अनेक कारक तथा प्रायस हैं जिनकी समितीय भविष्यवाणी असम्भव है और इन परिस्थितियों में बहुत या थोड़े-थोड़े अन्ध-विश्वासी समाज वाले व्यक्ति का जीवन होता है।

अनेक अंधविश्वासी प्राकृतिक निद्राओं के न जानने से उत्पन्न होते हैं। आदिमानव के पास पशुओं की कलाओं, चमड़े और सुव्यवस्था, धूलकैतुओं के प्रकाश होने, चमका चमकी की वस्तु होने, वहाँ तक की सुई और चमड़ा के निकलने और इनसे तथा जीवन में परेष्ठन आदि के बारे में कोई व्याख्या नहीं थी। इसलिए उसने इन चमड़े वाले कुछ निम्नजीवता कोक थी। विज्ञान के उदय होने के साथ इन विचित्र-भोगवादी की विनष्ट हो जाना चाहिए। स्वाधीन्य प्रवेष्टनी जीवन जलता के अज्ञान पर ही परमपित होते हैं। मैं किसी विशेष चमड़े, सम्प्रदाय या अनुष्ठान के बारे में बातें नहीं कर रहा हूँ। जैसे कोई बंधा बंधों का नेतृत्व करे, वैसे ही इस वर्ग के उपदेशकों, या गुरुओं के समे समय के अपने अनुयायियों का जीवन किया है। विज्ञान के पास उनकी देने के लिए संदेश है। यह संदेश है वास्तविकता का। निश्चित रूप से हममें से किसी के पास पूर्ण ज्ञान नहीं है किन्तु मनुष्य को जीवनीय करने की सक्ति मिली है।

विज्ञान कठिन स्वसंविद्ध सम्प्रदायों पर आधारित है। हम जिस संसार में रह रहे हैं वह बदलाओं की राशि है जो अपने लक्ष्य समाज पर है और यह सार्वभौम सुसंयुक्त नियमों कार्य-कारण सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है। यह संसार संयोजक नहीं बन गया। इसकी एक पूर्ण संरचना है तथा यह योजना-आधारित है। संसार अथर (सैद्धांतिक) नहीं है, यह सतिधीन है। इसकी सिकरता सैद्धांतिक अनुष्ठान में नहीं है, यह सतिधीन अनुष्ठान को कुछ करता है। संसार निरुद्धेय की नहीं है, इसकी हर कदम एक देवी और गणेशवादी कदमों के प्रेरित है। यह —

अन्य संज्ञा परिचरितनीय है और यह परिचरितनीयता इसकी वास्तविकता है।  
 सोझ सा किमान नहींक में ही सूजन की खाता है। इस तरह विनाश विधीय की  
 तरह ही उदार है। सुपु और साथ में जन्म और वृद्धि होती है और यह सब जगता  
 रहता है। संसार पूर्ण नियन्त्रितता के नियम पर आधारित है, इसका एक नाम की  
 किन्तु नहीं जाता है और इस प्रकार बहुतों में कार्यन, साहसिकता और आत्मिकता  
 के सब समर्थ रहते हैं। इन सबों के नियम के तथा निश्चयिता के नियम के  
 अन्तर्गत यदि एक स्थान पर ऊर्जा का विनाश होता है तो दूसरे स्थान में समान  
 मात्रा की ऊर्जा प्रकट होती है। यहाँ पर सोझ का नाम यहाँ पोकी भी हुआ  
 कहकर करता है। इन सबों के नियम तथा निश्चयिता के हमें संज्ञान के तीन  
 आधारभूत नियम प्रदान किये हैं—व्यक्तमान का संज्ञान, ऊर्जा का संज्ञान तथा  
 जीवन का संज्ञान। पूर्ण निश्चयिता प्रमाण की अविनाशिता का प्रतिफल है  
 (यहाँ प्रमाण किसी प्रमाण विशेष के लिए नहीं बल्कि व्यापक रूप में है)। पुनः  
 हमारी वैज्ञानिक क्षीर्ष इस स्पष्ट भाव पर आधारित है कि मनुष्य की प्रकृति  
 के रहस्यों की जीवन विकासने की क्षमता निमी है। यह विज्ञान ही इन रहस्यों  
 की जीवन करेगा उलगा ही पावेगा कि अनन्तता का नाम अधिक है। इस तरह  
 हमारी वैज्ञानिक क्षीय का अन्त नहीं है। विद्या की देवी (सरस्वती) हमें के  
 समस्त प्रकट होती है जो ज्ञेय, कार्यर तथा अज्ञा के साथ व्यवहार करती है।  
 यह प्रमाण हीमर्ष कवता करने परमकर्ता के समस्त उद्घाटित करती है।  
 यह चिर करीब, मोहक है, उसकी सुन्दरता हमेंसा अनुपमिष्ट करती है। यह  
 सुन्दरता न नष्ट होती है, न सुग्राही है, न ही मारती है। विज्ञान-माना का  
 ऐसा है जीवन, और ऐसी है विद्या की देवी (सरस्वती)।

यै यह पूर्ण दावे के साथ कह सकता है कि जो बात आपकी संशुद्ध नहीं  
 कर सके, यदि आप उस पर विश्वास करते हैं तो इसका अर्थ है कि आपने तर्क  
 करने के सभीतरी सुन का धितवान कर दिया है, जो मनुष्य की प्रमाण की गई  
 एकमात्र प्रमाण है। वैज्ञानिक जब नास्तिक नहीं होते। वैज्ञानिक आस्तिकता  
 मानकर नियम की इस देवी कार्यचौकितता को अन्वीकार करना है तथा इसके  
 प्रति आदर-भाव रखना है।

यदि एक रसायनज्ञ या भौतिकीविद् के रूप में है वह नहीं समझता कि  
 इलाहाबाद विश्वविद्यालय में किये गये प्रयोग कागजात, प्रोटोकॉल, टैबल या  
 ग्लोबल में कोई तर्क नहीं रखते हैं तो ये प्रोफेसर पर स्वीकार नहीं करता। केरे

प्रयोग उसी कार्य करते हैं जब वे एक ही (पुनः करने योग्य भी) तथा मानकी, विधि या योजना की प्रयोगशालाओं में भी प्रमाणित हों। प्रयोग के पुनः करने हेतु कोई समय का बन्धन भी नहीं है। यदि प्रयोग और परिणाम दूर करें, वस्तु-वस्तु बर्ष में, सौन्दी वर्षों में परिवर्तित होते रहें तो यह विज्ञान नहीं है। मेरे प्रेक्षण बलत ही कहते हैं, अपने हाथ मेरे निष्कर्षों को जटिल और बलत ही कहते हैं, मेरी प्रायोगिक तकनीक में अचूक ही कहती है, हमारे सभी दोषपूर्ण तथा अनिष्कर्षणीय ही कहते हैं लेकिन एक वैज्ञानिक की भावना अपनी इस मान्यता में निहित होती है कि अकृति सभी कालों और देशों के लिए एक ही है। समान पर्यावरण और परिस्थिति में अकृति समान कार्य करती है। प्रकृति में कोई कलान्वय नहीं है, वह हृषी है जो अपने ज्ञान और समय में अचूक है। वैज्ञानिक की सभी प्रयुक्त उसे विज्ञान की समर्पण, स्थायीरहित भावना से आवे बढ़ाने योग्य बनती है।

एक वैज्ञानिक जिस कम में देखता है, जिस तरह समझता है और जैसा वह सीखता है, वह सत्य के प्रति प्रतिज्ञाबद्ध है। अपने मार्ग में वह सत्य की स्थापना करने के अतिरिक्त अन्य किसी विचार के विरुद्ध नहीं होता। वह सत्य की स्थापना करता है। अपनी प्रयोगशालाओं में वह स्पष्ट और अविचल रहने का प्रयास करता है। वह सभी के ध्यान नहीं करता, वह उन सम्मानितों की परिष्कारित करता है जिसका वह प्रयोग करता है। वह अपने कालों को निर्धन होकर स्मृत करता है। वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि अपनी मान्यताओं को वह कैसे ही मानने वाला है। उसकी सीख के विषयों पर सहमान नहीं कराया जा सकता। वह हम उठाने की बात नहीं है जिसमें किसी बात को तब भिन्न जाता है। एक वैज्ञानिक जब सभी सीखियों के प्रति आदर-भाव रखता है जो इस क्षेत्र में पहले ही कार्य कर चुके होते हैं लेकिन वह उसकी सभी कालों को मानने के लिए बाध्य नहीं है बल्कि ही वे उसके पुनः, तबदेखकर अपना उच्च पराधीन वैज्ञानिक हों। नहीं नहीं, वह असन्तुष्ट विनीत होता है और इस निराश्रयता का तकाजा है कि अकृति भी वह बलत ही यदि किसी अन्य क्षेत्र के कलाई आती प्रतीत हो तो वह उसे स्वीकार करे। कम कम जाता भी वैज्ञानिक बहुधुरी से बढ़ा रहता है तथा अपने पूर्वधारियों द्वारा अपने समय में दिये गये विचारों में कानि माने के लिए प्रयास करता है और उसके विरुद्ध कार्यकर्ता निःसंकीर्ण अपने कनिष्ठों के विचारों को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार समय बीतने पर एक कार्यकर्ता पुराना ही जाता है, वह सब क्षेत्र में, जिसमें वह कार्य



कर रहा होता है, जिसमें वह कभी बचपायी या बीर करने छोटे कार्य के लिए उपयुक्त पुरस्कार और बहाजान प्राप्त हुआ होता है, समय के साथ उस क्षेत्र में नहीं रह पाता : इस तरह एक वैज्ञानिक यत्न हो सकता है किन्तु वह अविश्वसनीय या हठधर्मी नहीं होता

वैज्ञानिकों की इस अवस्था की जन जन शास्त्रों के लोगों ने भी बचपाया है : उदाहरणार्थ समाज विज्ञान, भाषा विज्ञान और कुछ दृष्ट एक वर्ग के क्षेत्र में भी : एक वैज्ञानिक के उपकरण, उनके कार्य का ढंग, उनका प्रभाववाद आदि अन्य विचारों द्वारा अपने क्षेत्र में उपयुक्त किये जा रहे हैं और इन कार्य में इन बहुत सच्चे हैं कि इन एक 'वैज्ञानिक युग' में रह रहे हैं : ज्ञान और उसका उपयोग दोनों अनोखे हैं इसलिए हमारी उपस्थितियाँ अस्थिर नहीं हैं : हमें पता नहीं कि वह विज्ञान हमें कहीं से लायेगा : विज्ञान ने मनुष्य के लिए पहले ही बहुत कुछ दे दिया है किन्तु की भाषा की जाली थी : मनुष्य अब अपने से अधिक अभिव्यक्ति है :

परन्तु विज्ञान की यह वैयक्तिक अवस्था हमारे लिए निम्न सभी वैज्ञानिकों उपलब्ध कर रही है : हर समाधान सभी समाधानों को जन्म दे रहा है : हमारे समाजित राष्ट्रों ने सभी आकाशी जाने गहरों में वायुमण्डल की समस्या पैदा कर दी है, कारखानों और शहरों में अपने अवशिष्टों की नदियों में कामकाज जल-प्रदूषण की समस्या बढ़ी कर दी है, परमाणुविस्फोट जाने क्षेत्रों में रेडियो-सक्रिय अवशेष, से रेडियोसक्रियता फैली समस्या उत्पन्न कर रही है : कई देशों में प्रौद्योगिकी में वैरीयवाले की समस्या उत्पन्न हुई है : आधुनिक जन-समाज और जीवन विज्ञान ने जीवन प्रत्याशा को बढ़ा दिया है लेकिन दीर्घायु होने तथा मृत्यु और रोगों पर आर्थिक नियंत्रण होने से जलजला अभिव्यक्ति रूप के बढ़ती जा रही है : हमारी भाषी पीढ़ी खतरे में है क्योंकि हमारी पृथ्वी के संसाधन सीमित हैं : हमनी एक एक जलान्दियों में बढ़ने वाले लोगों का जीवन-जीवन आशान नहीं होता :

हमारी संस्कृति ने विज्ञान मनुष्य की भी प्रभावित किया है और जन समुदाय जीवन की खतरे में है : समुदाय निवारी के जन में प्रकृत आसक्तिजन की भाषा एक कठिनाई के कारण की जल्दी बहुत कम है : यही कारण है कि हम अब बहुत कम मात्रा में तथा बेकार विज्ञान की तकतियाँ जन के उत्पन्न कर जा रहे

है। पहले समुद्र में होता लगाने वाली यह कहा करते थे कि समुद्री जल जीवन में लानी तथा अपने प्राय के वायुमंडल में भी लानी है। यह विमति आज हिलकुल भिन्न है। कुछैक उदाहरणों के लीर पर—हृक्कन और राइन नदी में निरने बाबा नम-नम तथा जीवोमिक ज्ञान, भूमध्य सागरीय किनारों का कूड़ा, फिलीपाइन नुना तथा भूमध्यसागरीय शोथकिक के पारे का एकत्रण, संसार के प्रतीती से बहुकर जी-जी-जी-जी का जेरीकटिका के वेमिना में एकत्र होना, जहाजों द्वारा लेनों के कटिजान के कारण होते किनारे, हमारे स्थापित बाइनों से निकला घुंसा, कलकतियों तथा कलकत जवकिधियों के जमने से निकला घुंसा—ये सब हमारे जीवन के राज्य के अंगनकन वायुमण्डल और सागरों को प्रदूषित कर रहे हैं।

प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान में वैज्ञानिक विचारों के सम्मेलन से हमें नई नई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। हम जहाजोंमें में भी हुए हैं। वे उदाहरण के लिए जीवनाली समस्या को घुंसा। जीवनाली जहरीले पदार्थ हैं लेकिन कुछ भावनों में मानव के लिए वे परमान विरुद्ध हुए हैं। वे विभिन्न रूप से साहरे से मुक्त नहीं। इनकी अनुपस्थिति में पीले, जानवर तथा समुद्र अनेक प्रकार की महापारियों से अहित रहने और फलनों, फलों, जंजलों तथा जल के जानवरों के लिए नाजीजीम (विरुद्ध) कठोरनाम बने रहने। इसलिए जीवनालीवी का उपयोग समी समय तक कीर्ती तथा पोरी की कसकता हुए करने हेतु हमें में उपयोग होना पड़ेगा। साक्षरानी से उपयोग करने पर भी जीवनाली कई तरीकों से, उदाहरण के लिए, रोक्क, कटुता आदि या मिट्टी में बीज सुरक्षा हेतु कार्य नये कलोरीकीकृत हाइड्रोकार्बन का उपयोग होने और अनुपचारित मूत्र में अम्लद्वारा द्वारा उनके पहुँचे तथा हवा द्वारा कर्मों के पहुँचने से निपटी में पहुँचते हैं। वे जार्नीकलोरीन जीवनाली मिट्टी में समी समय तक बने रहते हैं—पीपीटी, मरका की एम यू., हाईएलजीन के अर्धजीवन काल, 2.5 से 5, 1.5 और 0.5 से 4.0 वर्ष हैं।

वे जीवनाली नुदा से वेब जल या साव्य फलनों में बने जाते हैं। उदाहरण के लिए 1/2 किग्रा./एकड़ की दर से उपचारित एलजीन से साबु, सूजी और सावर में कसक: 0.03 और 0.05 भाग प्रतिशत मात्रा (पी पी एम) अवशेष पाया गया है। यू+एस+ए+ में आठ एम्पों के 67 कामों पर किये गये सर्वेक्षण में पाया गया कि आर्बोरोकलोरीन कीटनाशक (पी डी डी, डी डी ई, एलजीन, एन्जीन, हेप्टाक्लोर, हेप्टाक्लो-एनोक्साइड और साका-बीएनडी (19.1 पी पी एम तक

(बीसल 1-5 वी की एम०) मिट्टी में, 159-4-बीबीएम (बीसल 13-8) कोकुर में बीसलन 0-6 3-5 और 89 वी वी एम कमका बीसल साबा, बोये और एमन में पाया गया है। सीमिनबरी और साबिबो (1970) ने बताया कि अमेरिका में 1964-68 के बिने एने सर्वेक्षण के अनुसार सट्टी जल में बहु सबोस 0-05 माइक्रोवाल्मीटर तक पहुँच गया जो फेडरल कमेटी द्वारा निर्धारित जल शुद्धता सीमा से अधिक है। कुलों के जल भी संदूषित पाये गये। कुछेक स्थलों में बहु औद्योगिक जलों के सट्टी निःसारण (लीकेज) के हुआ है। क्लोरिदा में बहु कृषि में पेशाबिदान के अधिक इस्तेमाल से है।

प्रदूषित क्षेत्रों में जीवनाशी जलज वा जलसंचयन से प्रदूषित क्षेत्र के पीछों, इस पीछों को खाने वाले जानवरों, मछलियों, बीरों, के पित्त तथा लासटर वा इसी प्रकार के अन्य जानवरों के माध्यम से अनुभव के सरीर में पहुँचते हैं। कालव में ये जीवनाशी मछलियों में हुयारी, लाली कुला मासिदा बाबा में खाद्य शृंखला द्वारा खा सकते हैं। इस जैविक चक्र पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। ये वहाँ जल जीवनाशियों के बारे में नहीं बर्ते कर रहा हूँ जो हुआ में, विद्रियों में, जानवरों के या घरेलू जानवरों में, चारे में, सलाह, सलिकों, पाल, खाद्यान्न, मछली वा गृह में प्रवेश करते हैं। जीवनाशी प्रदूषण विकसित देशों में एक गम्भीर समस्या बन गया है। अमेरिका ने इसका अध्ययन सूत्रमता से किया जा रहा है। ये दूर प्रकार के प्रदूषण—जल, वायु और खाद्य—को 'अमेरिकन रिपु' में प्रकाशित (1972) वैश्वीय और माइक्रोवायोलोजी विभाग के प्रो० रेने कुबीत द्वारा प्रस्तुत लेख के निष्कर्ष से समान्य कर्णवा।

"औद्योगिक क्रांति के आरम्भ से ही रसायन संयंत्रों के निकलने वाली बाष्प और कोयले से उत्पन्न प्रदूषकों के सम्पर्क में उत्पत्ती क्षुरीय के निवासी आते रहे हैं किन्तु गटमॉटिक जलवायु के प्रभावित होने के कारण कालसिजनक माना गया। लेकिन आधुनिक जीवन तथा प्रदूषण के लम्बे अनुभव से उत्पत्ती क्षुरीय के लोगों ने ज़ादीरक प्रतिक्रिया विकसित कर ली है और इस निराशाजनक पर्यावरण को सुखी क्षुरी कबीकार सिना है।

"जैविक जल लोगों के सम्मुख जल में भी वायु प्रदूषकों का प्रभाव दिखाई देता है जो अपने आपको ऐसे क्षीयक वातावरण के अनुकूल बना चुके हैं। परिणामतः वेद बिदेन में कानिड परहनतम्बीय बीमारियाँ ही विकसित की

व्यवस्था बन चुकी है। ये सीमा प्रति के अमेरिका में बंद रही हैं तथा उन सभी क्षेत्रों में जहाँ जहाँ वर सीमासीकरण हो रहा है। इस बात के साक्ष्य है कि वायु प्रदूषण से अनेक प्रकार के बीमार तथा आर्थिक राज्य के रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

“वायु प्रदूषकों के विभिन्न प्रकार उन विभिन्न प्रकार की विभिन्नतायुक्त व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक समझे जो अन्य प्रकार के पर्यावरणीय प्रदूषकों से उत्पन्न होती हैं। सीमा इस बात पर बल देने कि वायु, जल और आवायु प्रदूषण के विभिन्न प्रकार के बंधने हेतु पर्याप्त नियंत्रण किये जायें। लेकिन ये सीमा ही पर्यावरणीय प्रदूषकों की रचना सामान्यता सहूल करने समझे जो उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन में बाधा नहीं डालेंगे। विभिन्न क्षेत्रों से समझे समय तक सम्पर्क से अनेक प्रकार के रोग-जनक उत्पन्न होने जिन्हें सुलभ नहीं पहुँचाया जा सकता और ही सकता है कि अपने कई वर्षों तक न पहुँचाया जा सके।”

प्रदूषण की समस्या से बचने हेतु आनुवंशिक और आनुवंशिक व्यवस्था अनेकित है। पर्यावरण को बचाने हेतु पर्याप्त सामूहिक प्रयास की स्वीकार करना। बच्चों की नन्दनी काय रखना, जलवायु को नियंत्रित करना और सभी-संकेतित करना, आवायु प्रदूषकों की सुलभता पर ध्यान देना, सार्वजनिक स्थानों पर साफ़ तथा सुनिश्चित करना—इसके अलावा है जिन्हें सामूहिक रूप से, व्यक्तिगत स्तर-व्यवस्था को बाधा पहुँचाये बिना सम्पन्न किया जा सकता है। लेकिन कोई भी प्रयास जो व्यक्तिगत रूप से किया जाता है वह नकारा जा सकता है। व्यवस्था हर व्यक्ति व्यक्ति कोलन करने, सार्वजनिक व्यवस्था न करने, समाचार सुलभता करने, सभी-संकेतित के अर्थिक लेखन, प्रदूषण से समाचार सम्पर्क, और तथा सीमा के समाचार सम्पर्क के अर्थिक के परिचित है। पर्यावरण के उत्पन्न करने प्रत्येक व्यक्ति समाचार तथा विभिन्नता होते हैं कि सामान्य जनता इसके प्रति बहुत रूप व्यवस्था हो पाती है।

अन्य क्षेत्रों पर आते :

इस वैश्वीय मुद्दे में सभी क्षेत्रों पर दृष्ट कराना सुरक्षित नहीं है। ये बड़े वैश्वीय के व्यवस्था की बात नहीं कर रहा जो सामाजिक, पर्यावरण या सार्वजनिक मुद्दे इतिहासों द्वारा होता है। ये बहुत ही सामान्य पर्यावरण और जल प्रदूषण के बारे में संकेत किया है। आवायु में, विभिन्नता में अतिविशेषता करता

हैं, पर्यावरण को स्वच्छ रखने हेतु व्यक्ति कार्यों की महत्व दिया जाता है। व्यक्ति कार्यों के रूप में वेनच्युअर (आधुनिक पर्यावरण के प्रति कार्यवाही) और वातावरण को स्वच्छ करने के लिए किया गया कोई भी कार्य स्वच्छ कहलाता है। हममें से हर व्यक्ति पर्यावरण को थोड़ा-बहुत प्रदूषित करता है। हमारे जन्म से ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि पर्यावरण स्वयं सौंर-विकिरण (ऊष्मा और प्रकाश), वायुमयति, आवश्यक तेज वाले चीजें और वायु धाराओं द्वारा स्वच्छ हो सकता है। हम पर्यावरण को संतुलन, प्रदूषण तथा बीदों के बचाने हेतु अभियोग्य वा होने करते हैं। आधुनिक उपहारों के प्रति संतुलन उपेक्षाओं की अतिवृद्धि के रूप में यह हुआ नरम बोधदायक है।

अभी आपका चेहरा ऊपर उठ रहा है, आपने पाद ऐसे विस्तृत सूक्ष्म हैं जो आकार नहीं है। लेकिन आपने अपने बड़े बहुरों तथा घनत्वों में जीवन के आधुनिक तरीकों को अपना रखा है। कुछ वर्षों पहले मैं दलित अमीरों के बीच के जीवनशैली में था। मेरे बहुर में स्वच्छता का बहुत वातावरण को प्रदूषित कर रहे थे। स्वच्छ हर परिवार के पास एक या दो कारें थीं। कुछ घनी परिवारों विशेषकर यूरोपीय परिवारों में सड़कों की संख्या से अधिक कारें थीं। जीवन हर मोर्चे पर खिल रहा है। ऐसी परिस्थितियों में सावधानी अत्यावश्यक है।

यहाँ मैं प्रदूषित कर हूँ कि सावधानी को ऐसे वाक्यों में भी आवश्यक है जिसकी चर्चा कम हुई है। बड़े बहुरों के भीतर घर निम्नस्तर भी एक समस्या बन चुका है। सामान्यतया हम यह सोचते हैं कि भीर हाथिप्रतिष्ठ है। आपने विश्विद्यालयों के आस-पास कुछ कार्यप्रतिक्रिया शुरू की है। 'ऊष्मा और नहीं, विश्विद्यालय यहाँ है'। भीर केवल बीमार व्यक्ति की परेक्षा नहीं करता अविश्व व्यवस्था स्थिति में भी मानसिक तनाव उत्पन्न कर देता है। ऐसी परेक्षा पर भीर, बाजार में भीर, रिहायशी मकानों में भीरदुख, अत्यन्त-कमल व्यक्ति-विस्तारक पत्र, वाइकोपेन, रेडियो, ट्रांसिस्टर, टीक, मछली-पेसा हल है। जो भी हो, मानव की अनुकूलन-क्षमता निरन्तर है। कारखाने में मशीनों के बीच काम करने वाला मजदूर दानवी आवाजों के बीच भी अचल हो चुका है तथा इस पर किता स्थान मिले इस अरवाह्यकर वातावरण में कार्य करता रहता है। लेकिन यह रखिये कि भीर प्रदूषण एक बीमा विष है जो तब तक पहुँचान में नहीं आता जब तक इसके घुरे प्रभाव परिलक्षित नहीं हो जाते।

वह बात याद रखी जानी चाहिए कि गौर ही पर्यावरण-अनुपम का एक पक्ष है। लोग यह तो लेते हैं, पर इसके लिए वे बड़ी सीमाएं चुकाते हैं। लोग आपत्तिपूर्ण सोच आकाशों को नुपने में अपने काम बन्द करके अपने को अनुकूलित कर लेते हैं। फिर भी इससे इसके आन्तरिक विनाशकारी प्रभाव पर कोई रोक नहीं लग पाती है। इसके कम नुपने या रुवाई कम से कुछ निश्चित स्थिति-आवृत्तियों के प्रति बहुदेवता का योग ही सकता है। इस प्रकार गौर के प्रति अनुकूलन की सीमा यह है कि इस संघीत तथा मनुष्य की आवाज के अतिरिक्त मूल्य पूर्णों का आक्रमण नहीं हो सके।

पुराऐतिहासिक तथा ऐतिहासिक काल के मनुष्य ने पर्यावरण के विनाश-कारी प्रभाव को दूर करने तथा उनके अनुकूलन में अपनी योग्यता सिद्ध की है। इस प्रकार की अनुकूलता जीवों को उनके जीवनकाल में सम्भाव्यकारी होती है परन्तु बाद में यह घातक होती है। मनुष्य के अनेक पुराने रोग बीज हैं और सामाजिक अनुकूलताओं (bio-social adaptation) के निमित्त प्रभाव हैं जो अनुकूलनीय थे तथा दीर्घकाल में दीर्घजीव बन गये।

अब से कुछ छोटे मुद्दों का उल्लेख करने का कुछ दृष्टान्तों की याद जीवना हो उठे। हमारे औद्योगिक कार्यक्रमों तथा उष्ण करिबन्धीय अर्थव्यवस्था के जलाने से (यह बहिष्कार वाले देशों में अज्ञित है) वायुमण्डल में बीज (धूल, कार्बन और अन्य कणों का धार) में वृद्धि हुई है। वे कम विकीर्ण होते हैं और सौर-विकिरण को अवशोषित करते हैं तथा भूमि सतह के बाह्य निकलने वाले अवरक्त-विकिरण को भी प्रभावित करते हैं। इस तरह से कार्बन-निर्मित सतह बढ़े क्षेत्र के जल्पा अनुकूलन को प्रभावित करते हैं। मैंने अपने ही देश में देखा है कि कईमान मौसम एवं अनुरूप लक्ष्मी अनुकूल नहीं मिलनी पाते या छः घण्टा पहले भी। यद्यपि मौसम की बिनाफने में कई कारण सम्मिलित हैं परन्तु वायु-मण्डल में कणिकाओं का बढ़ता भार भी महत्वपूर्ण है तथा इससे इसका नहीं किया जा सकता।

कालम अपनी जनसंख्या द्वारा भी अपने वातावरण के जल्पा-अनुकूलन को परिचालित कर रहा है। हमें पता है कि वर्ष 2000 तक पृथ्वी पर जनसंख्या दुगुनी (इस समय 3.6 बिलियन है) हो जायेगी तथा प्रतिस्पर्धित ऊर्जा की अपर आवृत्ति की अपेक्षा अज्ञित होगी। हर प्रकार के ऊर्जा की पर सम्पूर्ण संसार में 5-6% की दर से बढ़ रही है। सम्भव 1000 से 100000 किलोवाट्ट के क्षेत्र

बीबीबीकृत होने और इसमें पाने वाली ऊर्जा धुने से प्राप्त हुई ऊर्जा के बराबर होती और महादीपीय स्तर पर यह सीकेशन कईबाल की अवस्था 40 वर्षों बाद हुई महादीपीय सीकृत विकिरण 1% की दर से बढ़ जायेगा । इस प्रकार कईबाल विज्ञान एवं तकनीकी युग का मनुष्य अवलोकन कर से अपने परिवेश की बदल रहा है जिसके परिणामों की परिणामकारी नहीं की जा सकती ।

जब मैं जलवायु-परिवर्तन के सम्बन्धित कुछ जानकारी की मनुष्यात्मक प्रणाली का अध्ययन कर रहा हूँ । जलवायु जानकारी की जरूरत के अभाव तथा गतिशील परिवर्तनीयता से कुछ मात्रा अवैधविज्ञानों क्षेत्रों में विकसित हो चुके हैं । धुने के अन्तर्निहित एक और अनुभववालीय क्षेत्र, यूरोप और धुने अनुभव राज्य के अने अन्तर्नीय क्षेत्रों की बात कर जलवायु बना लिया गया है और जल क्षेत्रों के अन्तर्नीय क्षेत्रों के अन्तर्नीय क्षेत्रों में । परिणामतः कुछ धुने क्षेत्र का 20% मात्र धुने दर से बदल दिया गया है विशेषकर जल तथा जल के अन्तर्नीय क्षेत्रों में । कुछ और अवैधविज्ञान क्षेत्रों में सिचार्ड के लिए जानकारी जल की मात्रा से धुनेजल अन्तर्नीय क्षेत्रों में कमी आ रही है तथा सिचार्ड अन्तर्नीय क्षेत्रों का धुने बाष्पीकृत क्षेत्र बढ़ता जा रहा है ।

मनुष्य का दूसरा प्रभाव है और बना कर सही जल की रोकने, सीकृत निर्माण करने, अवैधविज्ञान क्षेत्रों के जल विज्ञानिक करने, गतिशील क्षेत्रों में । जलवायु के लिए, धुने क्षेत्रों जल अनुभव की प्रभावित करने की क्योंकि जल में धुने की अवस्था जल पर्याप्तक अवस्था होती है तथा जल-अन्तर्नीय अधिक होने से से जल में अधिक मात्रा में जल पहुँचने ।

जलवायु परिवर्तनों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विज्ञान-परिवर्तन का भी बहुत प्रभाव होता है क्योंकि ऐसे परिवर्तन से कुछ जल अवैधविज्ञान क्षेत्रों में बदल जायेगा तथा जलवायु सिचार्ड जल का 3/4 से 4/10 मात्र जल से बाष्पीकृत हो जायेगा । भारत में हम जल और जल अन्तर्नीय बनाने की कोशिश कर रहे हैं तथा कई देशों में हम जलवायु की विकसित नीतियों में रखने के लिए उन्हें प्रभावित कर रहे हैं । एक तरह से इसे प्रकृति पर मानव की विचार कला का रहा है परन्तु यह जलवायु जल बहुत विचार समझाई परकृत करने तथा हमें अपनी अवैधविज्ञानों की बहुत बड़ी कीमत चुकानी होती ।

सीकृतनीय धुनेकरण से प्रभावित धुने क्षेत्रों में गतिशील क्षेत्रों के लिए कर

निर्वासन के अन्तः क्षीपीकरण की तर भी प्रभावित होनी। जल्दी ही समुद्री वर्षों को नियंत्रण के लिए आवश्यक कर की गई उचित के चालक बीबीय तथा विश्वव्यापी प्रभाव हो सकते हैं।

सितंबर आर्मीस्टाइड तथा अन्य हिस्टरी द्वारा कीटीकरण करके कृत्रिम वर्षा कराने में पूर्ण सफलता नहीं मिली है, अन्तर्गत ऐसे प्रभाव का राष्ट्रीय प्रभाव पड़ता और राष्ट्रीय समस्या उत्पन्न करता। बादलों के स्वाभाव में भी अगले वर्षों हो सकते थे। वर्षा पैटर्न में किसी भी प्रकार का परिवर्तन वायुमण्डल के जलवा-वाहक पर प्रभाव डालता है। इसलिए बड़े पैमाने पर औद्योगिक की डिवाइ, जिसमें 'होरोसिनी' (चक्रवाती) के मार्ग को बदलने के प्रभाव सम्मिलित हैं, वर्षा तथा क्षीयता के सामान्य पैटर्न को बदल कर इस विश्व में वैज्ञानिक प्रभाव से राष्ट्रीय विकास भी उत्पन्न हो सकते हैं।

ये तकनीकी और विज्ञान में उन्नित मानव के कार्यों का एक और उदाहरण है। ये वायुमण्डली और अन्तरिक्ष यानों की बात कहेंगे तो मनुष्य की एक मानस उत्पत्ति है। वायुमण्डली के अन्तर्गत निकलते हैं तथा यह अनुमान लगाया गया है कि अन्तर्गत दशक में हर वर्ष का छः वर्ष पर जेट ईजन क्षमता की तुलना में आधुनिक जहाजों द्वारा ईजन क्षमता दुगुनी बढ़ जायेगी। जेट विमानों का ईजा निम्न औद्योगिक के दोषोन्निवारण पर एकत्रित होता इस बात के संकेत हैं कि जेट वातावरण के अधिक वातावरण वाले क्षेत्रों में जन ईज्यमान उत्पन्न हो गया है और यह वायुमण्डल के जलवा-संतुलन पर भी कुछ न कुछ प्रभाव डालेगा। दूरवायिक यानों से निकला ईजा स्ट्रैटोस्फीयर में एक या दो वर्ष तक मौज्जात रहता है इसलिए इसकी सामर्थ्य को बचाना नहीं जा सकता। अन्तिम का मौकम विज्ञान आज की अवस्था पैचीश होना क्योंकि हममें अनेक मानवनिर्मित प्राणत मिल-जुल जायेगे।

विश्ववि कक्षमान विज्ञान एवं तकनीकी को इस सारी कलों पर ज्ञान देता होगा।

**प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभाव :**

पृथ्वी पर, पृथ्वी के भीतर तथा हमारे चारों ओर उपनिर्मित प्राकृतिक संसाधन मौज्जात हैं। कृत्रिम चक्र तो हर वर्ष, हर दूसरे या तीसरे वर्ष (चौबी-कभी



समाहो), औद्योगिक चक्र 5 के 10 वर्ष में, तथा वन चक्र 20 के 50 वर्ष में पूरे होते हैं। लेकिन भूमध्य चक्र केवल एक बार किसी भूमध्य चक्र में ही पूरा होता है तथा इस प्रणाली पर मानव जीवन काय में दुबारा नहीं पड़ता। इस प्रकार के उत्पादों को जो भूमध्य चक्रों में ही उत्पन्न होते हैं समुदाय बहुत सीधे प्रति से उपभोग कर रहा है। कोयला, पेट्रोलियम, धातुएँ और जलिय इस क्षेत्री के उपभोग हो सकते हैं। यद्यपि इनकी प्रतिस्पर्धित करने हेतु संश्लेषित उत्पाद बनाने के प्रयास हो रहे हैं पर इस दिशा में सावधानी बरनी है। समुदाय की इस समग्र और अधिक ऊर्जा, और अधिक भोजन की आवश्यकता है तथा एक मा की महाशक्तियों के साथ बहु आयामयु आयुधों का सामना करने का रहा है। हजारों भावी पीढ़ी को विश्व व्यवस्था का भीत ही सामना करना है बहु संभव है किन्तु है सम्भीर। वह सब निम्नले की शर्तों की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की देन है। अब हम दीधन तथा ऊर्जा के निम्न परमाणु खोजी की खोज में हैं। परन्तु बीडा कि जगता है समस्या उसकी आमान बढ़ी है उनकी अपनी प्रतिस्पर्धित है। यह भी सामना करित है कि परमाणवीय का सीर ऊर्जा का उपयोग करने पर हम किस प्रकार की आवश्यकता में का विरिने।

### विज्ञान और धर्म

यद्यपि वे अपने पूरे जीवन में विज्ञान का विचारों रहा, परन्तु फिर भी संसार के सामिक जीवन में बहुतो शक्ति होता रहा है। पूरे विज्ञान में आज मेरा वह मारा है। धर्म की व्यापक समझो और अपने विज्ञान का साम्यकारीकरण करो। कुछ महाशक्तियों पूर्व तक संसार के धर्म के दुर्गों का उत्पन्न था, आज वैज्ञानिकों के अधीन है। अविश्वस्य धर्म के चर्चे, विरसापरी, कल्पेयों तथा बर्दे-बर्दे संवर्धनों का जन्म हुआ है और आज बहुतरणीय विज्ञान सैवाकार प्रीयोरिकी में विद्यमान जो मुक्त है। इन दोनों के उत्पन्न समान थे—साम्यकार मार्ग के उत्पन्न की देखता, प्रत्येक तरीके से उसके जीवन-मर की वताता तथा उसकी छिपी हुई शक्ति को प्रकट करना—विज्ञान वह अपना पूर्णतम साकार प्राप्त कर पाये। लेकिन विज्ञान और विरसापरी दोनों असफल हो गये हैं। पहले से निरवधारणीयता तथा मानव मन की दुर्बलताओं का जीवन किया, सम्भविकताओं और कल्पों की जगम दिया, जीवन की स्थिर और संकुचित बना दिया, दूसरे मनु के बाद स्वर्ग का वादा किया किन्तु छन्दे इसने सर्वमान जीवन की नादनीय बना दिया। दूसरे से कर्पाय विज्ञान और तकनीकी से भी सामिक इन्फिन्टी, अस्वास्थ्यकर प्रतिधीविताओं, कलंकोय तथा आयतों के विराधिवानन की जन्म दिया।

एक अंतर्मुखित वैज्ञानिक ऐसा वैज्ञानिक नन नया है, जो इन सभी बातों को नकार देता है, माने कि वे अनुचित और अवैज्ञानिक हैं। वैज्ञानिकों और आध्यात्मिकियों के अतिरिक्त हमारे पास नारिष्ठक लोग भी हैं जो यह कहते हैं कि विज्ञान प्रत्येक वस्तु की व्याख्या नहीं और यह यह नहीं मानता कि धर्म का भी कोई मूल्य है। फिर हमारे पास आध्यात्मिकियों का समुह है, जो अपने अविश्वस्य अनुभवों पर बल देता है और यह आशा करता है कि हमारे भी उनकी संवेदना को स्वीकारें। वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को हमारे भी धार्मिक स्तर को जेना नहीं उठा पाये। मनुष्य और अधिक गुण, अधिक संवेदन, अधिक स्वीकृति और अधिक अविश्वसनीय हो गया है जो न केवल अविश्वस्य स्तर पर है अपितु सामूहिक रूप से समाज के समस्त रूप में या राष्ट्रीय महता के स्तरों में प्रतिबोधी के रूप में है। विज्ञान तथा धर्म के बीच का यह विवाद कम समाप्त होना चाहिये।

हमें कुछ दलितियों के संकेत है। हमें धार्मिक संकेतों में विज्ञान का समाक नहीं उठाना चाहिए। हमें आध्यात्म का धर्म के नाम पर वैज्ञानिक तथ्यों को लोका-लोका नहीं चाहिए (यह अतीत ईसाई धर्म को मानने वालों के लिए है) और फिर हमें दुष्टता में भी बातों को स्वीकार करना चाहिए। यही यह कि विज्ञान और आध्यात्मिकता (वैज्ञानिकता) अविश्वस्यता तक पहुँचने के समय चिन्म किन्तु स्पष्ट मान है। विज्ञान धर्म का आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कोई व्यापन नहीं के उकता। हमारी यह कि विज्ञान एवं आध्यात्मविज्ञान और छोटे एक दुष्टों के विरुद्ध या धार्मिक अविश्वस्यता (अन्धविश्वास) को एक है। यदि धर्म को अविश्वस्यताओं और कठिनों के संलग्न कर दिया जाए एवं उसे अविश्वस्य कर दिया जाए और विज्ञान के इस अंतर्हीन एवं अद्वैतवादी ज्ञान को अविश्वस्य कर दिया जाए तब यह विरुद्ध रूप से जीवन के उच्च स्तरों को स्वीकार कर सके एवं इसे धर्म से जोड़ दिया जाए तो हमारे लिए एक ऐसा प्रयास संभव होना नहीं भीतिका एवं आध्यात्मिकता के बीच कमजूर नहीं होनी और यह संसार जिनमें हम रह रहे हैं सभी वन मानेगा। इस उद्देश्य के लिए विज्ञान और धर्म को एक भाषा स्वीकार करनी होगी और मिलजुल कर काम करना होगा। विज्ञान के कारण सामूहिक युवा बने हुए हैं जो नया है। जीवन उसके लिए अर्थात् नहीं यह गया। जीवन का वैश्विक एवं आर्थिक अवर्धन उसे कोई संतुष्ट नहीं देता और यह प्रतीति दिखाने है कि अपने जीवन को अर्थात् नहीं बना पाता।

आध्यात्मिकीकृत विज्ञान बाधर हमारी समस्याओं का कोई हल प्रस्तुत कर सके।

## 2. प्राचीन भारत में विज्ञान\*

**मै** भारतीय छात्र संघों के आयोजकों का कहना है जिन्होंने मुझे 'प्राचीन भारत में विज्ञान' विषय पर बोलने को कहा है। 'प्राचीन' शब्द का अर्थ विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है। सभी विद्यार्थी दिन में बोस्टन में वाइस आर्ट्स संवहान्य में एक अंतर्राष्ट्रीय संवेष्टी में भाग ले रहा था, जो अतामी समारोह के रूप में भी जाना जाता है। हमें एक भाषण में पूर्व-कोलंबियन युग को बहुत पुराना समय बताया जा रहा था। भारतीय इतिहास के अन्तर्गत में और इसी तरह से जब हम एशिया और अन्य-पूर्व देशों के बारे में बात करते हैं, तो प्राचीन शब्द हमें अतामियों पूर्व नहीं तो हजारों वर्ष ईसा पूर्व तक ले ले रहा है। चीन का इतिहास 1000 ई० पूर्व और ग्रीस का इतिहास 500 ई० पूर्व है तो मिस्र का 1000 ई० पूर्व है। भारत में इस वैदिक काल की बात करते हैं, जो ईसा से कुछ हजार वर्ष पहले की बात है।

भारत अत्यन्त प्राचीन परम्पराओं का देश है। एक तरह से वह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम विभिन्न तथा जीवनपूर्ण सम्बन्धी देश-विशेषों को संरक्षित करने की मनोवृत्ति वाले नहीं रहे। अपने मध्य काल के बहुत ही भारतीय विद्वानों को देखा होगा। फिर तो सुरक्षित है, लेकिन हमारे पास विद्वानों के कोई रिवाज नहीं है। हमें उनके नाम ज्ञात नहीं हैं, उनके जीवन के बारे में विस्तार से कुछ पता तो दूर रहा। यही बात हमारे विद्वानों की है। हमारा देश मध्य युग के किलों के अतिरिक्त पुराने मन्दिरों, गुफाओं, स्तूपों तथा बौद्ध विहारों के माध्यम से जाना है। किन्तु हमें स्पष्ट, कलाकार तथा सोचनाकार जीवन-कीर्ति से, वह ज्ञात नहीं है। जब हम अपने इतिहास की रचना करने बसते हैं तो यह हमारे लिए हानिकार सिद्ध होता है। अरबों, विभिन्न जातियों के मध्य वसूली की प्रथा है,

\*27 जून 1970 को इन्टरनेशनल हाउस ऑफ़ विस्कॉन्सिन प्राचीन-इतिहास (रोड आईसीए) में दिया गया भाषण।

कबलिक बहुत से भारतीय क्षेत्रों में बहुत करीर की जगह दिया जाता है या कभी-कभी वाली में प्रवाहित कर दिया जाता है। इसीलिए हमारे बहुत सभ्यते नहीं है। मित्र में कुछ करीर के साथ उन समुच्चों को इस विभाज्य के साथ रख दिया जाता था कि अधिकतम मध्य के समय के कब के उठ सके होने ली थे पुनः प्राप्त हो सकेंगी। इस प्रकार की पुरानी कानुनों की छोड़ से उस पुन पर नवीन प्रकाश पड़ता है जो हम से बहुत दूर है, लेकिन हमारे देश में ऐसी कानुनों के सम्भवत हो जाने की आशा नहीं है। इसलिए भारतीय पुण्यलय तथा पुन इतिहास इन चीजों की को कुछ हालि है। ऐसे हीन छोड़ है जो हमारे भारतीय इतिहास का निर्माण करती है : (1) पुरातात्विक प्रमाण—वसा वर्तन, मुम्पुतिवा (टेण्डीटा), चर्चों के अवशेष और सिक्के। (2) साहित्य की अनेक विधियों तक फैला हुआ है—वेदिक, जो वैदिक साहित्यों जैसे—श्रुत्येव से लेकर ब्राह्मणों और आरण्यकों तक है जो अनुमानतः प्राचीन काल से 500 ई० पूर्व, परावैदिक काल (500-300 ई० पूर्व), बौद्ध युग और शिकन्दर पूर्व युग (300 ई० पूर्व से 300 ई० तक) और अन्तः 600 या 800 ई० का अत्यन्त महत्वपूर्ण काल, जब भारत बहुत ही बहिर्देशीय और अनेक संस्कृतियों को समेटे था, जिसमें वैदिक, कुनासी, कुषाण, सीथियन, पार्थियन, चीनी और अरब समाहित थे। ये एक महत्वपूर्ण किन्तु पर जोर देना चाहूँगा। प्राचीन समय में भारत में किसी संस्कृति या देश के विरुद्ध पूर्वाग्रह नहीं था और इन कई-जनविहीन के तथा दूसरे देशों से आने वाले विचारों को स्वीकार करने हेतु तैयार थे। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में हमने सहयोग की कामना की। मैं यह कहूँगा कि इस दृष्टि से विज्ञान तथा ही अन्तराष्ट्रीय रहा है। हमारे देश के लोगों ने दूर-दूर तक यात्राएँ की कर्वाँये भारतीय संस्कृति को सम्पूर्ण जगत में ले गये। हम पश्चिम और पूर्व की गये। यदि आप जावा, माली या अन्य द्वीपसमूहों, बर्मा, मलेशिया और पाईलीय में जायें तो आप पायेंगे कि अलग-अलग क्षेत्रों में हमारी पुरानी संस्कृति फैली हुई है, जो हमारी सीमाओं पर न केवल समझ मार्ग के अतिरिक्त समुद्र मार्ग से भी फैली है। यह एक भाव्य अवसर है। आधुनिकतात्मक अवस्थाओं, लोकरीत, पीछी तथा लोक संस्कृतियों में दूर-दूर के पड़ोसी देशों से भारतीय सम्बन्धों का उत्कर्ष पाया जाता है।

अवसर का औसत छोड़ अधिकृत परम्पराएँ हैं। निर्निर्णय रूप से सभी कानों में हमारी परम्पराएँ परिवर्तित होयी नहीं, लेकिन इस देश में एक बात अत्यन्त रोचक है कि जब कभी कोई नई बात आती है, कोई नयी विधि या नई

वस्तु प्रभावित होती है जो प्रारम्भ में भारत को संकीर्णपूर्वक स्वीकार कर लेता है, परन्तु बाद में बिना किसी भेदभाव के फैलता रहता है। उसी के साथ पुरानी परम्पराएँ भी नई सुवाई जातीं, बहुत से मानवीय में वे आज भी समायी हैं। इस तरह से बढ़ते हुए बीसवीं शती के आखिरात और संसार के साधनों को पाते हैं किन्तु आज ही मोरों, बैलों, साँड़ों, ऊँटों द्वारा खींची जाने वाली सवारियाँ आज भी कुछ दूर तक सेवा में अभी हुई हैं। इस तरह के जहाँ हमें कई सम्पत्ता की प्रत्येक नई वस्तु देखने को मिलती है, वहीं साथ में पुरानी वस्तुएँ भी वहीं या अन्य कब में दिखाई देती हैं। वे पुरी तरह समाप्त नहीं हुई। हमने हमें बीते इतिहास के निर्माण में सहायता मिलेगी।

किसी युग की खोज का निर्देश उस युग के ज्ञान के आधार पर होता है व कि हमारे सर्वमान्य मानदण्डों के। वैज्ञानिकी में मूल्य के योगदान का निर्देश उस युग की अवधारणाओं के परिशेष में किया जाता है। यहाँ तक कि प्रथम विश्वीय-यैवी प्रेरण-कुपकनी केराके युग की उपलब्धि की प्रशंसा करती है और इसी तरह से किसी प्राचीन देश की उपलब्धियों के मूल्योक्त में भी उचित ऐतिहासिक परिशेष की आवश्यकता होती है। किन्तु पाटी की सम्पत्ता ऐसे राष्ट्र के बारे में बताती है जो गहरा योगदान, विकासक्रम, महानगरी और धातुकर्म आदि के परिचित था। वैदिक सम्पत्ता ज्ञान के हर क्षेत्र में हमारी उपलब्धियों का बखान करती है। जैसे माया विज्ञान, भूगर्भ, सम्पत्ता, सर्वज्ञान और मूलभूत विज्ञान जैसे जीवविज्ञान, रसायन, द्रव्य, अणुविज्ञान के मूल विज्ञान, क्षेत्रविज्ञान और ज्योतिष। इस बात पर तर्क करना निरर्थक है कि वैदिक युग में अन्य राष्ट्रों की क्या उपलब्धियाँ रही तथा एक दूसरे को कन्होंकि कितना प्रभावित किया। प्रारम्भिक माया, संस्कृति तथा सम्पत्ता ज्ञान एक स्थान से शुरू हुई होती सम्पत्ता मानव विस्तार के कई केन्द्र हो सकते हैं। मेरा हमेशा यही इतिहास रहा है कि यदि सम्भावनी के प्रयत्न की दिशा का पता लगा लें तो सबसे मानवीय ज्ञान तथा संस्कृति के प्रयत्न की दिशा का भी पता लग सकता है। हर विविधता योग्य द्वारा संस्कृत और वैदिक सम्भावनी की आवश्यकता या सकना एक महान पदमा है। हमने माया-विज्ञान में खोज के क्षेत्र को बहुत दिया है और हमने तथाकथित ज्ञान व्यवस्था की कोलाहल किया है। वैदिक माया का सामग्री संस्कृत अपनी पुरानी तथा आधुनिक संरचनाओं के साथ बायीं के सबसे प्रारम्भिक संस्कृत का प्रतिनिधित्व करती है। संस्कृत सबसे पुरानी मातृ-भाषा की वैश्वरूप दुली है। प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुसार संस्कृत ही

एकमात्र जीवित दुष्टी है क्योंकि इस परिवार की अन्य छः पुत्र सदस्यों—हीरणी, ह्युमिनी, इटैलिक, कैपेटक, इष्टोनीक, लेटोलाबी में के किसी में पारदर्शिता तथा भावतात्व के विस्तार सुरक्षित नहीं है।

चूंकि मुझे विज्ञान के इतिहास में यह उत्पन्न हुई अतः मेरा दृष्टिकोण रहा है कि भारत हमेशा से अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों में विश्वास करता आया है। भारत ने कबड़ीकी तथा दूर सभी देशों के सहयोग से विज्ञान के हर क्षेत्र में योगदान दिया है। भारत का दुनियावी से सम्पर्क इस देश में सिकन्दर के सामयन से पहले से था। भारत की भाषा तथा भारतीय सम्प्रदाय भारत से अन्य देशों में पहुँचा। वैदिक भाषा में सर्वोच्च शब्द का प्रयोग बानेश्वर हिमालयी कदाचो के लिए सामान्यतः होता था। यह नाम से प्राप्त चीनी के लिए प्रयुक्त होने लगा। सुवर, सुवर, सुशील, संकेरील और अन्य कई शब्द इसी शब्दों के परिवर्तित रूप हैं जो कि वैदिक मूल का शब्द है। अथर्ववेद में चीन की तरह चीनी यह नाम कुल का वर्णन आता है। यह सुधरकेन के नाम से जाना जाता है। वैदिक साहित्य में इसे 'इलुकाय' बताया गया है। 'मधु' तथा दुग्ध उत्पाद मधुर भाषा में उपलब्ध थे। वैदिक काल के महानपुत्र अन्य उत्तम साधन हैं इस से अनेक देश जलानों से घारे में बताया गया है।

इस से स्पष्टर स्पष्टन प्राप्त करना एक महान उपलब्धि रही होगी। मान्य ही कोई अन्य देश दुग्ध उत्पादों के नामों में इतना आगे रहा होगा।

आज कदाचो के नामों में भारतीय सम्प्रदाय की और वाचन के साथ ही वो वा तीन महानपुत्र कालों की सम्प्रदाय है। वर्गीकृत भाषा में भी रहने वाले मधुम की 'मधुमान' (एक बहुत ही आनन्दप्रद शब्द) कहा जाता था, 'धन' और 'शान्ति' जैसे शब्द आनन्द और आनन्द उत्पादों के वर्णन थे, साथ ही वे अन्न और पर्याप्तता के प्रतीक थे। इन नाम और चीज़ों के प्रयुक्त थे। साथ और चीज़ों के लिए भी तथा अन्य शब्द भारतीय सम्प्रदाय के पड़ोसी देशों में पहुँचे। यह भारतीय परम्पराओं की भारत से यूरोप तक प्रसारित होने की बात है। वैज्ञानिक के जोसेफर ओवेन बीडम ने महान देश चीन के विज्ञान और सम्प्रदाय के बारे में लिखा है। वे अनेक विचारों तथा चीजों का आविष्कारों के लिए चीन की प्रथम श्रेय देते हैं। लेकिन वे कहते हैं कि आविष्कारक यह विचार करनेवा कि भारत का योगदान अधिक महान का था या चीन का। निःसन्देह 'चा' शब्द या हिन्दी में आम प्रयुक्त करता है कि भारतीय वाच चीनियों द्वारा जारी कयी।

लेकिन वहीँही देशों में 'सुगर' मोटे पदार्थों के लिए प्रमुख सन्द 'मार्केट' है बना है, जिसका कच्चा पदार्थ हम केवल चीनी प्राप्त करने के तरीके को ही नहीं जानते बल्कि उसके दानेदार, अकलत भी जानते थे। भारत में हमारे पास दानेदार चीनी बनाने के अनेक 'घरेलू' तरीके हैं तथा इनसे विभिन्न प्रकार की चर्बीय खाद्य से लेकर दानेदार चीनी तक बनाते हैं। ये विज्ञान के इतिहास के अध्ययन में तिब्बती की प्राथमिकता के बगैरे में नहीं पढ़ना चाहता। मैं स्वीकार करता हूँ कि यूनानी और चीनी बीच प्रारम्भ से इतिहासप्रिय थे। उन्होंने अपने इतिहास को अधिपतियों, तिब्बती के 'रिकाई' इतिहास सुरक्षित रखा। चीनी बीच चित्रकला में योग्यताप्राप्त के और उन्होंने हमारे लिए अपनी सभ्यता के बहुत ही प्राथमिक अधिलेख छोड़े हैं। मुद्रण कला भी चीन में विकसित हुई जिससे उनकी एक और अतिरिक्त साध हुआ। भारत ने यूनानी तथा अन्य देशों के लोगों के माध्यम के माध्य पूर्व तथा यूरोप के देशों में विज्ञान और संस्कृति में अत्यधिक योगदान किया है। चाचा विज्ञान यही इस संकल्पना की पुष्टि करता है।

बैलिक दुध में मधुम जी, चरवल, मोटे कनाक, मधुर, तिल और चरबी के परिचित था। इसमें से अनेक मधुम जी आज भी कार्मिककरणों और यहाँ में प्रमुख होती हैं। वे के अनुसार 'साम्य मधु' में पाँच मधु सम्मिलित हैं—मधुमी, चीड़ा, चाम, मेड़ और बकरी। साम्य जीवन में इन चीजों का कोई सबसे पुराना इति-  
 भिन्न या और मधुम जैसे ही आदिमानव के बाहर माना अपने अपने साथ तथा परिवार के लिए चार साम्य जीवों को प्राप्त करना किन्हीं चीड़ा, चाम, मेड़ और बकरी कहते हैं। ये अंशही जीवन में इसी रूप में नहीं पाये जाते। मानव समाज की यह उपस्थिति किन्हीं सुपरिचालित रही होती जब उसने कुछ अज्ञात अंशही जीवों की चीड़ा, चाम, मेड़ या बकरी जैसे उपयोगी सदस्यों के रूप में प्राप्त होगा। ये जीव हमारे परिवार के सदस्य बन गये। उनकी छोन हमारे जीवन में स्थापित बाहनों की छोन से किसी भी प्रकार कम नहीं है। यह मधुम की महान उपस्थिति की और हम जाइवों की इस पर मान है। यह कोई निर्दिष्ट बात नहीं है कि विज्ञान और तकनीकी की इसी उपस्थितियों के होते हुए हम आधुनिक युग में एक भी जानवर को अपने परिवार के सदस्य के रूप में बढ़ा नहीं पाये हैं। सभितों के रूप में जानू और टनाटर का उपयोग हाथीकि तथा है और अपने बगीचे में हम अंशही पृष्ठ उपाते हैं परन्तु जानवरों के प्राप्त करने के सम्बन्ध में हमारी अज्ञान उपस्थिति बरक्क रही है। मैं स्पष्टिगत रूप

ये वह विस्वासा करता हूँ कि वह प्राचीन भारतीयों की देन है कि हमारे पास जानकर है। ये हमारी संस्कृति की आधारभूति है।

वैदिक युग में गोधा, चाँदी, लोहा, टिन, लोहा (इस्पात भी) और लोहा धातुएँ ज्ञात थीं। जिसमें लोहा की दक्षिण अफ्रीका सोने के समान पर था। वे रोमन इतिहासकार के केसर के मित्रा और बने अनेक संस्कारों में भी देखे। यह लोहा-मापी बात है कि दक्षिणी अफ्रीका की सोने की खानों के पूर्व संसार का अफ्रीकाई सोना भारत के ही जाता था। भारत का सोना हजार वर्षों से पर्याप्त मात्रा में सोना विकसित रहा है। अब हम अफ्रीकाई सोने की निकाल चुके हैं। पहले हमारे पास रहना सोना था कि हम विदेशी चाँदी के लिए इसका विनिमय करते थे। सोने की शक्ति हेतु हमें पुरातन के प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। आज हमारे पास संस्कारों में दूसरी आवश्यकता के पहले के सोने के सिक्के रहे हुए हैं। लेकिन 'गठपद बढ़ान', 'संविधान संविधान' और हमारे राष्ट्रीय साहित्य के अनुसार सोने के सिक्के, सोने के पहले और अन्य सुवर्णपूर्ण वस्तुएँ सोने से ही बनती थीं। धातु के रूप में सोने की पहचान बहुत बाद में हुई। यह विचार था कि सोने का पता चलने से पहले ही चाँदी (जैसे और लोहा की मिश्र धातु) ज्ञात था। जस्ता और लोहा के अयस्क की कोक या कार्बन के साथ पलायन चाँदी केनार किया जाता था। कुछ समय तक सोना की भी एक धातु माना जाता था (यह जस्ता और टिन की मिश्रधातु है)। टिन को जल या बर्तन के नाम से जाना जाता था। भारतीय सौविधावरी में पारा बहुत बाद में सम्मिलित हुआ, सम्भवतः नाबार्न ने ऐसा किया। वे विचार करते हैं और जानते हैं। लोहा भी सोचते हैं कि यह नाबार्न की लोहा नाबार्न के विचार है जो लोहा दर्शन तथा लोहा-विचार में बहुतपूर्व स्थिति था।

[illegible]



साक्षात्कृत रहा है (अ) परीची पर विजय वाला वाली विरहदर आधुनी को सोने-चांदी में बदलता, बहु बारस परवर को खोज निकालने की जाता करता था (आ) बुझने तथा कलु पर विजय वाला वाली नवतु को खोज (इ) कवरी साकाम में नवतम कप में जिना पंख के चिड़ियों की लक्ष्म उड़ना । अब भारतीय रत्नविद्या में पाया जाता ही भारतीय कीविद्यावरी की बड़ी जाता की कि के सोनी इन्हाई पूर्व ही जावैनी । इस आधु के कप में पाया ही जात था, इसमें एक तुल बहु था कि किसी भी आधु के साथ आकासी के मिल जाता था और फिर बहु कालित होने जाता था । भारतीय कीविद्यावरी में नापार्जुन वारे के यौगिक पदार्थों के उपनी बने । हम भारतीय 'मकराज' तथा 'कडीम' नामक दो पदार्थों से परिचित हैं जो पते हुए अनुध के 'गुर्ली' की स्थिति से उत्पन्न होते हैं । चूंकि पाया उड़लनील था अतः बहु जाता की जाती थी कि इससे बनने जाता कोई पदार्थ अनुध की जिना पंखों के हवा में उड़ानेवा । वारे में अन्य निम्न आधुनों के रंग बदल दिने जिसके रसायनविद इसकी सहायता से निम्नतर आधुनों को और उपनीनी बनाने की सोचने बने । हालांकि इसमें से कोई भी इन्हा पूरी न हो सकी परन्तु वारे के निम्नतम अध्ययन से कीविद्यावरी में एक और अध्ययन कुछ पया । भारत के समान वारे के सम्बन्धित अध्ययन किसी भी अन्य देश में नहीं किया । एक साहित्य (रसतन्त्र) इसके साथी है । भारतीयों द्वारा अध्ययन किये गये वारे के गुणों का वर्णन करने हेतु एक पूर्ण व्याख्यान की आवश्यकता होती । कीविद्यावरी कभी मन्दिर में केन्द्रीय अर्धविद्यु आधु का लिय था जिसके वारे और अन्य वस्तुओं भी, जिन्हें महारत और नवरत कहा जाता है । यह अध्ययन विविध है क्योंकि इसमें वेचन काई (देखें तत्त जल कंठ) का साथ का नियमीकरण नियमन (ईडन के नियमन द्वारा, जलवापी का जल कड़ी था), अनेक प्रकार के अध्ययन, जिसमें जल अवसाद या वायुका कवचाह पर ऊर्ध्वपालन सम्बन्धित है, वा सैन्ध साथ पर जीवित शामिल है । नवी करना, निवसाया, दुमिदुन का गुना में कपम हरना जैसी जीवसाया की एक लक्ष्मिणी का जलम हुआ, जैना कि वे कहते थे । दवाओं की अलग-अलग बरीनी में एककर पंवारित किया जाता था । धीरे-धीरे प्राचीन भारतीय पार्मिनी में जीवित होने वाले रसायनों में मयक, मोरा, मोरक, नीलातर और पीले जैसा जलक एवं कालक के नाम जुड़ी गये । फिर वेक और अनेक रंगक ज्ञान हुए । जीवावतु भी एक सामान्य पदार्थ था जो मिट्टनी कीचने की तरह था । वारे की निवरीकृत करने का सुझा भीनी पुस्तक 'जल विद वाली बुधे' में दिया हुआ है । इसी

प्रकार भारतीय सीमिटागरी द्वारा चिन्न-चिन्न प्रकारों के विभिन्न रंग प्राप्त किये गये हैं। ये सभी नामर सिचि के अनुसार से वर्णित कर्नेंग।

“जब चारा खास के सम्पर्क में आता है तो वाष्पीकृत होता है तथा इसे पकी स्थान पर बनाये रखा नहीं जा सकता। अब इसके कई चीजे बनाई जा सकती हैं लेकिन सभी जब इसे किसी अन्य पदार्थ द्वारा नियंत्रित कर दिया जाय। यदि इसे सफाई में एकत्र किया जाने वाला चीनी एक्सीनाइट का कन्द, सात कन्द, ग्रेट ईनाइट, ग्रेट करण (गुड  $\text{NaCl}$ ), भारतीय सिचि, इरान, सभी चिन्, कछ हेलीट्टाइट, ज्योनिचम स्वीराट्ट, जिसमें वनक अशुद्धि होती है, साता वनक चिचि सन्काट्ट अशुद्धि होती है के साथ नियंत्रित कर दिया जाय तो अत्यन्तता का प्रभाव ही नहीं पड़ता। इनमें पुन बनाकर चिचि के विभिन्न प्रकार केई बनाओ तथा इसे पुन की आकृति देकर इसमें पाण्डा काँचो तथा एक कपड़े के निचले किनारे सीतल अन्विष्टों से ढुंढे होते हैं, जेठ कर एक वर्तन में सटकाओ तथा इसे सुखित चिचि के तीन दिन और तीन रात उखाओ। पाण्डा निचाम की ओर इसे सीतल सात में रखी।”

“पुन इस अन्विष्टपुन चिचि की सी, एक्सीनाइट की अशु, नीनाटर और सक्सीनाइट बराबर सात में मिलाकर चारे के साथ पीओ। सात दिनों तक इस मिश्रण की चारे के सम्पर्क में रखी। फिर पाण्डा सात करो। मोटा सा लेख, वनक और सीनाटर मिलाकर वर्तन में रखी। इसमें एक दिन और रात (चारे की) उखाओ। यह उपयोग में जाने के योग्य हो जाता है।

चीनी पुनक का यह सुखा विविध रूप से भारतीय है। भारत में हमारे साक्षि में चारे की नियंत्रित करने, गुड करने तथा परिचरित हेतु जेठ वनक पुनके निचाम है। भारतीय सीमिटागरी प्रायोगिक ची तथा विश्व की किसी ची सीमिटागरी से अलग की।

भारतीय सीमिटागरी नामों पर एक मोटो 2500 सात पहले जेठ पुनक के निर्माण में हुई थी तथा इस मोटो के विवरण चरक के नाम पर बनी ‘चरक संहिता’ में मिलते हैं। चरक स्वयं भी इस लेख में सहान विभूति के दिवसी पुनका केवल द्विजेष्ट में की जा सकती है। सम्पूर्ण वनकचिचि तथा सभी वनकचिचि की सभी वनकचिचि एक ही कई, उनकी परीक्षा की गयी, एक व्यवस्थित रूप में वर्णित किया गया तथा उस दिनों के चीनों के

अनुसार उनकी विशेषता की गयी। वैदिक संहिता में अनेक ऋषी-भूटियों तथा पौष्टों का विवरण मिलता है जो मनुष्य के रीतों के उपचार के काम में आते थे। ज्ञानवर भी कुछ ऋषी-भूटियों और पौष्टों को जलते से निकाल उपयोग के रीत से पीकित होने पर करते थे। ये ऋषी-भूटियाँ मनुष्य को भी स्वस्थ बनाने वाली होती थीं। आर्येय में इसका एक सन्दर्भ मिला है। प्रकृति में उपलब्ध किसी भी वस्तु के लिए भारतीयों का कोई पूर्वाग्रह नहीं था। इनका विचार था कि प्रकृति में पाई जाने वाली कोई भी वस्तु अनुपयोगी नहीं है, इसे इसके उपयोग का पता लगाया चाहिए। अतः वे जहाँ तक पहुँच सके उन्होंने सर्वोत्तम किया। यह भारतीय पारसी की आरम्भिक स्थिति थी। द्वितीय अक्षर्या में पौष्टों के औषधीय गुणों का शिखरबोध हुआ, तीसरी अक्षर्या के कार्बनिक और अकार्बनिक रासायनिक और अरासायनिक पदार्थों से औषधीय पदार्थ बने। इस प्रयास में उन्होंने आलसादक, हैलादक, कलसादक और सन्निह बनाने की अनेक विधियाँ प्रस्तुत कीं।

जब सारे प्रयोगकर्ता महत्वादीय छात्रों की महत्वपूर्ण बनाने या रीतों के उपचार के अनेक प्रकार के नुस्खों की खोज में लगे हुए थे उसी समय रसायन विज्ञान का उपयोग कुछ के लिए भी हो रहा था। कोटिलवह्वर कर्बोनाफ्त (अविनिष्ट तिमि—300 ई० पू० से 300 ई० तक) में दूम परदा, मनुष्यों के वायुमण्डल को दूषित करने, मनुष्यों की आँखों से रीत उत्पन्न करने तथा मनुष्य होने के अनेक नुस्खे मिले हैं। यह सब उस समय के मान के सम्बन्ध में जानकारी देता है जैसे। वाँट एवं मान का मानकीकरण, गुला का किस्तुर विवरण, मिलावट की जानकारी। यह भीतर में उस ज़रूर की पहचान हेतु का परीक्षण और जीव परीक्षण के बारे में बताया है जिसकी राजा या उसकी को दिया जा सकता था। अविष्ट मानवी में यह सब परीक्षा की भी जानकारी देता है।

जब ये प्राचीन भारत औषधिविज्ञान की उपलब्धियों के बारे में बात करता है तो मेरा तात्पर्य उन देशों के योगदान को नकारना नहीं है जिन्होंने इस क्षेत्र में कार्य किया है। कुछ पाश्चा और औद्योगिक निमित्तों अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए भी जबकि कुछ भारतीय ज्ञानविज्ञानों तक सीमित थी। भारत ने अपने अनेक ऋषी-भूटियों और पौष्टों पर कार्य किया, अन्य देशों ने भी अपने लोगों को खोज की होती। अधिकतरजना उपकरण एक जैसे थे। कुछ नुस्खे एक देश से दूसरे देश में पहुँचते रहे। ये अपने मानवी में हमेशा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना सुझावों की बात करता है।

एक राज्य महानपूर्व सेवक जिसमें मानव के पोषण दिया और शिक्षा अनुयाया का यह है स्वयं चिकित्सा । कदाचारण के मानिष्य में 5 प्रकार के विशेषज्ञों के बारे में संकेत किया गया है - रोगहृदय या चिकीत्सिष्य, कर्महृदय या कर्म चिकित्सक, शिवहृदय या शिव का उपचार करने वाले, कृत्यहृदय या शान्तिक, निर्योग्यवर्धन या पुरोहित चिकित्सक । वैदिक साहित्य विशेषकर अथर्ववेद में कर्म चिकित्सा के अनेक कर्तों का वर्णन है । अथर्व में वेद के प्रमाण पर छोड़ा बनाने की बात की गयी है । वे यही की अग्निमी कुम्हारों की उपलब्धियों के बारे में नहीं कहेंगे (वे पोषाधिक वे) । लेकिन युद्ध में अपना जीवन कर्म चिकित्सा में ही लगा दिया । उसने कर्म चिकित्सा की बात कर्तों में बाँटी (1) आहूय (होम चित्र का निष्कर्षण) (2) शेष (3) शेष (4) धृष्ट (5) शेष (6) शेष (7) शेष और (8) शेष । कर्म चिकित्सा के छात्रों की वास्तविक उपस्थिति करने से पहले उन्हें वास्तविक कर्म कर्म पर अनुभवों पर अपने चारों के अध्यापन करने के लिए कहा जाता था । उदाहरण के लिए, शेष शक्ति या पुनर्जन (कुकुर्किटा मैनिस्मा), पालक (जीमेलिक कल्पित) या पापक (कुकुर्किटा पुनर्कुम्हार) के ऊपर, विश्वास का अध्यापन पानी के बारे में करने के लिए, वृत्त आनंदी के पुनर्जन पर, शेष का अध्यापन आनंदी के निष्ठाने धान पर अर्द्ध बाण रहने विवेक के, निर्योग्य वृत्त आनंदी के शरीर पर या वल कर्मिकी के ऊपर किया जाता था ।

मुकुट संहिता में 101 जन्मक्रिया जन्मों के आवश्यक विवरण हैं। साधर ही कोई अन्य पुस्तक प्राचीन समय की ऐसी जन्मक्रियाओं के बारे में बताती है। वे जन्म इसलाल के बने होते थे तथा इनमें वेने होते थे कि एक जाल का जो विच्छेदन किया जा सकता था। उन्हें एक लकड़ी के बर्तन में जमानेन के तबले पर रखा जाता था। इन जन्मों में अनेक प्रकार की छुरियाँ, केसर, चादर, अग्नि विषही, कैंची, होकार और मुई के अलावा अनेक प्रकार के हुक, लूप, छेदक, चिमटी, बाल, जलाकर, छिद्रक, मुद्राचक्रिका और जलाकर से दसमें चौदह प्रकार की छुरियों के विवरण हैं। जन्मक्रिया जॉन से मिलित होती थी और जन्मों के बीछी जाती थीं। आवश्यकतानुसार उन्हें सम्बन्धी के अनुसार काट दिया जाता था। जन्मविच्छिन्नक जॉन, हनुमन्त, रक्षित और अलना छुरियों के टूटने की बीछने में सुदृढ ने और छिद्र कार्यों की केसर, छेद, अग्नि-अग्नि चोट आदि में कभीकुर किया जाता था। छिद्र और बिहरे के बीछों की चिला जाता था। कभी-कभी कार्यों के बीछों के छोटे टुकड़े निशानमें हेतु पुस्तक का उपयोग किया जाता था। सुदृढ की सुदृढ-बीछी बिछी और चक्राचों के छीक

किया जाता था। समय क्रिया कुहनी के झुकाव के अतिरिक्त अन्य विन्दुओं पर भी की जाती थी। नगर के अन्धों का प्रयोग अधिक होता था। पुष्टि के लिये, अनेक ऐसे कार्य बहुतायत में होते थे। बाँट और बड़ी हुई निम्नोच्चिक क्रियाओं की बाँट दिया जाता था तथा पुनः उत्पन्न होने के रोक्ने के लिए इन पर आर्सेनिकल चरहण लगा दिया जाता था।

सुधुत में नाक और कान की ठीक व्यवस्था में लाने के लिए प्लास्टिक चरम क्रिया के बारे में भी बताया है। इसके लिए नाक की खचा ली जाती थी। केशवराहवरत चरम विशिष्टता में कोटि-विन्दु निकाला जाता था। बहुविध चरम क्रियाएँ कई प्रकार की थी, जिसमें पीरा करना और भ्रूण की कुचलने जैसे क्रियाएँ शामिल थीं।

विशेषतः सुधुत के समय भारतीय चरम विशिष्टता वीक्षणविज्ञान नहीं, क्योंकि विशिष्टता विज्ञान का ज्ञान नहीं था। ऐसी ही चरम विशिष्टता यूरोप की भी थी।

अब मैं गणित और ग्योतिष के विभिन्न क्षेत्रों में भारतीयों द्वारा किये गये योगदान को बताऊँगा। एग्नेट में बड़े-बड़े संख्यात्मक अंक जैसे अशुत (दस हजार) और चारविं अशुत (चारवीं हजार, VIII, 24) का उल्लेख है। मेधा विधि नामक अग्नि विद्या सम्बन्ध मनुर्वेदीय छन्द तथा वैदिक साहित्य के बहुत से मन्त्रों के साथ जोड़ा जाता है, उन्होंने पराई की गिनती का प्रतिपादन किया एक (1) दश (10) सप्त (10<sup>2</sup>) सप्त (10<sup>3</sup>) अशुत (10<sup>4</sup>), विभुत (10<sup>5</sup>), प्रभुत (10<sup>6</sup>), अर्बुत (10<sup>7</sup>) अर्बुत (10<sup>8</sup>), अशुत (10<sup>9</sup>), अशुत (10<sup>10</sup>) अशुत (10<sup>11</sup>) और पराई (10<sup>12</sup>)। मनुर्वेद में विभिन्न संख्याओं की एक सारणी है (XIV 28-31 और XVIII, 24) तथा 1, 3, 5, 7, 33 इनमें चार के गुणों की भी सारणी (X VIII, 25) 4, 8, 12, 16...4, 448 है। वैदिक साहित्य में 1 से 19 तक संख्याओं, फिर 19, 29, 39, 49, 59, 69, 79, 89, 99, और फिर विषम तथा सम संख्याओं 4, 5, 10, 20 और 100 के गुणक संख्याओं की सारणी है। इस तरह पराई तक गिनती की गयी है जैसा कि मनुर्वेद में है। देने वाली पुस्तक 'साचीन भारत के वैज्ञानिक कर्मचार' में बताया है कि मेधाविधि में वैदिक कर्मचारों में विभिन्न तक संख्या की है। ऐसी के लिए दशक शब्द बहुत सार्वक है, ईट की छोर आंगुली से की जब उन्हें अपने इन्डि (बाय-क्रिया) के लिए अतिरिक्त बनायी गयी। बाद में वे ईटें

सकान और अन्य वास्तुकलाओं को बनाने के काम आने लगीं। मुख्य मुख्य में विभिन्न आकारों (बलाकार, आयताकार, त्रिभुजाकार, पंचभुजाकार) की ईंटों तथा उनके इस उपयोग के बारे में विस्तार से बताया गया है। वैदिक युग के संस्कृत एक, द्वि, त्रि आदि शब्दों से जानी जाती थी जिन्हें मुख्य रूप से आज भी यूरोपीय भाषाओं में उपयोग किया जाता है। वैदिक सभ्यता की पुस्तक—  
 वालक कृत निबन्ध—शासन एकमात्र पुस्तक है जो उस संस्कृतों की सभ्यता के बारे में बताती है जो ऋग्वेद में आई हैं। इस आधार होने व केवल संस्कृतों के प्राथमिक विचार दिये अनिवार्य रूप संस्कृतों के वर्तमान नाम तथा इस और उनके शास्त्रों के शब्दों के बारे में भी बताया। वैदिक युग में ही हमने सर्वप्रथम में उपयोग होने वाली संस्कृतों की इकट्ठीक विकसित की। कुछ देवता भी संस्कृतों के साथ जुड़े हैं :

संख्या	1	अग्नि
	2	अश्विन
	3	विष्णु
	4	शिव
	5	ब्रह्मा
	6	कवि
	7	सूर्य
	8	सुहस्रति
	9	विज
	10	कर्म
	11	शत्रु
	12	विश्वदेवता: (सभी देवताओं से)

यह शायदियों की आसक्तियों विधि थी।

अब मैं एक अन्य प्रश्नों के प्रश्न के विषय में कहूँगा जिसका प्रश्न आर्यभट्ट प्रश्न (जन्म 476 ई०) ने भारतीय संस्कृतों की समता की एक तथा अर्थ के साथ जोड़ने के लिए व्यवस्था की।

स्वर

अ	1	इ	$100^1$
इ	$100^0$	ए	$100^2$
उ	$100^3$	ओ	$100^7$
ऋ	$100^6$	औ	$100^4$
ॠ	$100^4$		

वर्णमाला

क 1 ख 2 ग 3 घ 4 ङ 5  
 च 6 छ 7 ज 8 झ 9 ञ 10  
 ट 11 ठ 12 ड 13 ढ 14 न 15  
 त 16 प 17 फ 18 ब 19 व 20  
 श 21 ष 22 स 23 ह 24 ळ 25  
 र 30 ऌ 40 ए 50 अ 60  
 इ 70 उ 80 ऋ 90 ॠ 100

इस तरह कयूर मछ 4, 320, 000 के लिए जाया है

$$\begin{aligned}
 &= (\text{क} + \text{ख}) \text{ उ} + \text{ग} \times \text{ऋ} \\
 &= (2 + 30) 100^3 + 4 + 100^3 \\
 &= 32 \times 10000 + 400,000 \\
 &= 4, 320, 000
 \end{aligned}$$

इसी प्रकार

दि० शि बुधवार 1, 582, 237, 500 के लिए है—

$$\begin{aligned}
 &= \text{ह} \times \text{इ} + \text{ख} \times \text{इ} + \text{ग} \times \text{उ} + \text{घ} \times \text{ऋ} + (\text{क} + \text{ख}) \text{ ऋ} \\
 &= 5 \times 100 + 70 \times 100 + 23 + 100^3 + 15 \times 100^3 \\
 &\quad + (2 + 30) \times 100^3 \\
 &= 500 + 7000 + 230000 + 1500000000 + 820000000 \\
 &= 1, 582, 237, 500.
 \end{aligned}$$

हमारे कार्यक्रम को अपने व्योमिषि धर्म में बड़ी संख्याओं को लोगों के रूप में सम्मिलित करने में आसानी हो गयी। इस प्रकार के समितियों द्वारा बड़ी संख्याओं को सम्मिलित करने से कुछ दूर तक संख्याओं में स्थानीय मान की विचार-विचार का जन्म हुआ। हम भारतीय इस तथ्य से अति आश्चर्य है कि (1) भारतीयों ने सबसे पहले इस पर आधारित संख्याओं की व्यवस्था की। (2) उन्होंने स्थानीय मान की व्यवस्था की। (3) सर्वप्रथम धर्म की व्यवस्था की। तथा उसका प्रयोग किया। भारत में हम सामाजिक अधिकारों को जमाना महत्व नहीं देते। हम परम्परा को बड़ी-बड़ा प्रदान करते हैं। हम अपने साहित्य को मिलित-मिलित या लक्ष्मी-लक्ष्मी नहीं मिलित बोलकर और आपसी संसार से बचाते रहते हैं। कार्यक्रम पंचमी लक्ष्मी में पैदा हुआ था। भारत का वैदिक व्योमिषि 100 ई० पू० या उसके पुरी का है। वैदिक यह विचार रहा है कि इस धर्म में ही सभी समान हैं मिश्रित-मिश्रित ही सभी की स्वीकार किये बिना सम्मिलित नहीं हो सकती थी। (1) समष्टि के पूर्ववर्ती लोगों ने अपनी समानता विचार कर ली, न कि लोचक, उनके पास संख्याओं के संकेत भी थे। (2) वे अपनी सभी समानताओं को बिना स्थानीय मान का प्रयोग किये नहीं कर सकते थे (3) उनके पास धर्म के लिए कोई संकेत रहा होगा या ही यह किन्तु या या कोई भी साहित्य।

समस्त और धर्म की व्यवस्था भारतीय साम्राज्य विद्या पर आधारित है। यह धर्म (विचार में) तथा धर्म दोनों है। इन दो धर्मों के लिए पूर्व और बाद (पूर्वतः उत्तरतः में जाने लगे) — पूर्वतः पूर्वतः के आरम्भ होने वाले इस उपविषय की भाषा में) है। पूर्व धर्म अन्त के लिए प्रयोग होता है तथा इसकी समस्त जी-ज-ज-ज है। जी और जी अन्त के लिए है। जी अन्त में स्वर की (A.U.) की लक्ष्मी होनी के तथा जी अन्त अन्त व्यवस्था किया जाता है। यह जी जी या जी या यह है। इससे यह स्वाभाविक था कि अन्तर्गत भाषा की रूप के अन्तर्गत होनी कोई भी साहित्य होनी। दूसरी समानता में, यह एक और पर लक्ष्मी (अन्त) और इसके और पर लक्ष्मी है। वैदिक परिभाषा में लक्ष्मी में किन्तु की विचार है और इसे परिष्कृत माना जाता है। इसलिए यह पूर्वतः स्वाभाविक था कि धर्म की एक किन्तु द्वारा प्रकटित किया जाता। जी-जी-ज-ज-ज-ज-ज-ज, ये सभी जी लक्ष्मी द्वारा, जिसकी बिना किन्तु है, विचारने वाले हैं।



इस अनुभव की सरसि बड़ी खोज है इस संकेत 'ख' वा 'आकाश' का उपयोग किसी संख्या के स्थान के प्रति संकेतों, हजारों को व्यक्त करने के लिए करना। यह भव्य संकल्पना थी। ऐसा इसलिए कि ओम् वा ख वा ह्य (संख्याओं में ये अणु वा परिमाण, एक मोल बिन्दु) में पूर्ण से शून्य, अनन्त से आत्यन्त वा बहुत से अणु के हो छोड़ है। इस संकल्पना से संकेत वाकर हजारों पूर्ण शून्य की 10 के सभी पाताओं (शुद्धतक और अनात्मक) का सम्बोधन कर सकते थे।

सीडेनर नीडम ने संख्याओं के स्थानोपमान तथा शून्य के बारे में चीनियों ने जो दावे किये हैं उनके विषय में विस्तार से लिखा है। वे अपने तर्कों पुरातत्त्विक प्रमाणों पर आधारित बताते हैं। भारत में हम परम्परागत ज्ञानों पर, जो चीनी पर चीनी भौतिक कन के संवर्धित होते रहे, निर्भर रहे। विषय के अनुसार चीन में वसित की 'अद्वितीय सुन्दर 'यु' स्थायी सुज्ञान बिन्दु' जिसमें छह संख्याएँ पायी जाती हैं, 5वीं वा सातवीं जगहों में लिखी गयी। प्रो० नीडम ने इस ग्रन्थ के विषय संस्करण को देखा जहाँ भारत में छह संख्याएँ नहीं हैं। पचमाई वाला कन के लिखी गयी है। चीन में वसित से सम्बन्धित छमाई का कन 11वीं जगहों में आरम्भ हुआ लेकिन पुरातत्त्विक तथा पुराज्ञानवीय प्रमाणों के अनुसार छह संख्याओं का उपयोग हजार वर्ष पहले के ही हो रहा है। नीडम के अनुसार यही सुज्ञान 542 ई० पू० में वसित बिजिमिनि यह लिखने के लिए उद्धृत की जाती है कि छह संख्याएँ चाओ पुन के मध्य की हैं। उस ज्ञान का सम्बन्ध बृहत् वसित की आहु निर्धारण से है तथा है (bri) के वसित पुन का विवर्धन करने को वा तीन 6 प्राप्त किये जाते हैं जिससे पुन की आहु 2666 लिख जाती है। इनसे ज्ञानीय मान प्राप्त होता है वाहु यही सुज्ञान ग्रन्थ का पुनः खोज हुआ अत्यन्त नीडम के अनुसार वसित स्टेड्स से पूर्व काल के प्रमाण के कन में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके लिए विषयों में प्रमाण उपलब्ध है। यदि सुज्ञान (Shao) निम्न सम्बन्धित चिनही-सर्गों का प्राचीन खोज है जो संख्या (अंकन की) प्रथम बहुसांख्य ई० पू० की है। कुछ ज्ञान सन संख्याएँ विशेषकर—5, 6, 7 और 10 स्पष्टतः सर्गों के कन में सम्बन्धित लगती हैं।

जैसा नीडम कहते हैं, चिन (Chiao) और ह्य (Hao) के समय में 7 तथा 11 जैसी दो संख्याओं की पूर्णतया स्थिरीकृत कर दिया गया था। चूँकी इसकी के कन में तथा दूसरी दश के लिए, पहली 100 के लिए ही दूसरी 1000

के लिए और इस तरह के जालों के लिए भी उपयोग में लाई जाती है। ऐसा की सीकरी जालावडी तक के क्रमशः घुँस (1500g) और होंग (1500g) संख्याओं के रूप में जाती जाते लगीं। इस काम की शुन रख सुझाव चित्र कहते हैं।

बचना करने में हमें सबसे पहले संस्थाओं के स्थान तथा संरचना के बारे में (What) जानना होगा। इसाइनमें ऊर्जाधर तथा वहाई की संस्थाएँ क्षैतिज, सीकड़े की संस्था ऊर्जाधर और हुकार की संस्थाएँ क्षैतिज रहती हैं। इस प्रकार हुकार और वहाई की संस्थाएँ एक जैसी लगती हैं, यही तरह से वन हुकार और सी की। जब हम ऊपर जाते हैं तो हम और अधिक जगह यही कर पाते और उ की कोई संशोधन नहीं मिल पाता है।

[illegible]

Thus for example, the number  $4\pi^2$  is represented as  $\frac{4}{1} \pi^2 = 1^2 \pi^2$  in the Seng.

Figures tended to condense into monogrammatic letters, with an extra cost  $\approx 10$  ms.

सूच के पीछे संकेत बिना बिबु-माओ (1247 ई०) कृत सु सु बिबु  
 भाष में बना गया जाता है। लेकिन अनेक लोगों का विश्वास है कि इसका  
 संबंध पहले से ही, इसके पहले वाली सताब्दी में, आरम्भ हो गया था।  
 सामान्य विचार है कि यह भारत से सीधे लाया गया जो सर्वप्रथम मंगोलिया में  
 मौजूद है (870 ई०) मंगोलिया में गया गया। लेकिन चीन के अनुसार इस  
 संस्करण के लिए कोई सकारात्मक प्रमाण नहीं है और इसका यह सब इन  
 दार्शनिक विचारों के (12वीं सदी में) लाया गया जो निबोल्डनसुतिमान को अधिक  
 दिय है और चीन यह कहते हैं कि गुन गनितज्ञों के पास पूर्ण पिकिपिन संकेत  
 के जैसा कि कहाने की किता 1,470,000—64,464—1,405,536 जो इन  
 प्रकार लिखाया गया है—

प्राचीन भारतीय संस्थाओं की जो कारगिरी सेवार की गई है उसमें भारतीय संस्थाओं में यह देखा जा सकता है कि अष्टोक (ई० पू० तीसरी सदी) के समय के अब तक हिन्दू-जयसी संस्थाओं का विकास स्थिर गति से चलता रहा। बहुधाग उपलब्धनीय है कि इन सभी संस्थानियों में बहुत हीन पुर्वीक श्रीनी संस्थाओं की तरह ही है, कुछ संस्थानियों में 4 के लिए गुला (x) का चिन्ह (मानपाट अभिलेख 150 ई० पू० या अलग निदर्शों पर पाई जाने वाली संली में काट्टी विधि में 200 ई० ) पाया गया है। लेकिन समय-समय सभी में 10, 20, 30, 40, 100 आदि के लिए अलग-अलग संकेत थे। (इनमें कोई स्थानीय मान का चटक नहीं था) और जैसा कि नोटम कहते हैं—इस तरह का उपयोग इन्होंने सभी समय तक बना कि स्थानीय मान की पहिचान स्पष्ट न हो सकी।

भारत में शुभ का प्रथम पुराणिमिक प्रमाण नवी नदी के अन्त में मिलता है हिन्दु नीडम के मधुवार इंडोनीय और दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य भागों में यह हमारे 200 वर्ष पूर्व मिला हुआ था। इनके विकास के कारण में स्थानीय मान के उपयोग में सम्मिश्रित सांख्यिक पुरा तथा पुराणिमिक समान विवादास्पद मन चुके हैं। 500 ई० से पहले हुए तथा स्थानीय मान का विकास माना जाता था, यह सभी की पूर्वजन्म सम्मेलन नती रहा क्योंकि भारतीय इतिहास का एक अनिवार्य तथा निरन्तर अभिलेखों की कमी है।

कैसी विविधता अभिलेखों की यह न परीक्षा द्वारा स्थानीय मान को 800 ई० पू० से लगे ले जा सके। लेकिन कोर्डीस (Coedes) ने यह बताया कि इंडोनीसी अभिलेखों में स्थानीय मान बहुत पहले (कम्पोजिटा 604 ई०, कम्पा 609 तथा जावा, 732 ई०) उपयोग होता था। उन्होंने संकेतस्थलों का उपयोग किया जिसमें हर अक्षर का एक निश्चित संख्यात्मक मान था।

शुभास जी सा द्वारा 718-729 ई० के सम्पादित स्थानीय तथा संकेति विचार के अदान पर पाई हुआ न न किन में शुभ का प्रयोग है। इन प्रयत्न के एक हिस्से में कि में किन्हीं किन्हीं संकेतों के आने से है, भारतीय माना विधि पर भी एक प्रकाश है।

नोटम द्वारा प्रस्तुत सभी सामग्री के आधार पर ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं : संकेत, स्थानीय मान तथा शुभ की संकल्पना प्राचीनकालीन थे

भारत में विकसित हुई। यह कहना कठिन है कि किस स्थान पर यह संकल्पना विकसित हुई वा यह कीजें जहाँ यह वा विषये पहले बहुत दृष्टका सुप्रसिद्ध किया। चूंकि पश्चिमीय प्रतिभाएँ—ग्रीक, यूनानी, रोमन, भाग सभी सर्वप्रथम रूप में उपयोग में आई जाती थीं, इसलिए स्वाधीन मान और 'सूत्र' की भारत में सर्वप्रथम रूप में उपयोग किया गया। भारत के यह संकल्पना दार्शनिक, काल्पनिक, भाषा, गणित और अन्य पूर्वी स्थानों में भी नहीं उड़ी भारतीय पहले ही अपनी संस्कृति से वा चुके थे। चीनी की इसके सम्बन्ध में आगे और इस प्रकार सूत्र, स्वाधीन मान और संख्याओं की संकल्पना चीन में ग्रीक अर्थ के समान ही पहले पहुँची। यह मुख्य संकेत है कि चीन में अपने दिखाते सिद्धांत की कला, विचारकता, दुरातिथि और दार्शनिक प्रतिभा की सुप्रसिद्ध रक्षा जिसका अर्थव्यवस्था भारत में था।

संस्कृत विज्ञानों का सर्वप्रथम उपयोग क्षेत्रगणित (सैमाहल) सम्बन्धी इकाइयों में हुआ। उदाहरण के लिए 1 पर=14 अंगुली, 1 अंगुलि=34 पित्त। इस प्रकार सूत्र सूत्र में  $\sqrt{(450)}$  का मान 21 अंगुलि 7 पित्त बताया गया है, पुनः  $\sqrt{2}$  के मान को भी बताया गया है।

$$\sqrt{(450)} = 21 \frac{7}{34} = 21.21$$

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3 \cdot 4 \cdot 34}$$

$$= \frac{577}{408} = 1.4142156$$

संस्कृत विज्ञानों के विकास के सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों के दावे के बारे में यहाँ बहुत नहीं कहेंगे। ग्रीक से केवल चीनी सांख्यिक के परिवर्तन में इसकी चर्चा की है। उनके अनुसार संस्कृत की स्वाधीन मान का आज भी विश्व (सैमाहल क्षेत्र) में प्रयोग होता है जिसका मान 330 ई० पू० है। यह निम्न प्रकार है —

Ch 59/37/51 संस्कृत संकेत

C एक' की से कम है और फिर भी 5 से अधिक है। यह स्वाधीन मान विज्ञान (बीजगणित) के सम्बन्धित भी है।

CS नाँव के भीतर एक है (एक है क्योंकि 5 के लिए एक संख्याएँ 11111 है फिर) भी 'एक' में 'पीप' है क्योंकि हर संख्या का में नाँव है) तथा वहाँ में एक संख्या एक '10' के बराबर। ऐसा कहा जा सकता है कि यह 5 के दो संकेतों के बराबर है।

इसके द्वारा नीडम यह कहना चाहते हैं कि स्थानीय मान का विचार अभी ही अपनाई कर के सफ हो गया हो या पूर्णकर्मण न मिला हो लेकिन यह चीन में 'नून लू लुवान चिंग' के पन्ने ६० की पृष्ठों पढ़ते ही जात रहा है। नीडम के अनुसार चीन की सामंतिव कला भी बहाली है कि दसमसक प्रचाली थी। कोई हिमू (Pitha Mitha) तीकने लगी ई० के काल से ही मानचित्र आनटाकार बनते थे और हर क्षेत्री 100 मी की थी। चिन्ता मान के होकर जाउनी लगी में यह परम्परा परम्परा पर उत्कृष्टि लवकों के (1137 ई०) उन्मत्तम स्थान पर पहुँच गयी। भारत में इस तरह की मानचित्र कला का अनेक प्रमाण यूरोपीय क्षेत्रों के जाने के पहले का नहीं मिलता। यहाँ तक कि यूरोप में भी, वणि इराकलैनेन तथा टालेमी के मानचित्रक प्रयोग की छोड़ दें तो कैरहनी बतानवी के कारण में पोर्टोलन आई के कारण तक दसमसक प्रचाली का पता नहीं था। नीडम चीन में दसमसक प्रचाली की 14वीं सदी ईसा पूर्व तक ले जाती है। इस मानचित्र के चीनी प्राथमिक सम्प्रदायों में अतिरिक्त थे।

भारत में ज्योतिषि की वक्ता सुप्रसन्न हुन। वैदिकार्थों के बनाने के साथ हुई थी कर्माकार, मायताकार, मोक्ष या अर्द्धमोक्षकार होती थीं तथा इनका क्षेत्रफल विनिश्चित होता था। मायने की इसाई एक मुख्य थी जिसका अर्थ था कि मृतकता द्वारा अपने सिर के ऊपर हाथ की ऊपर उठाने से थी सम्बाई प्राप्त होती थी। किसी तरह से यह विचार आया कि वैदिकार्थ कर्माकार या मोक्ष ही परन्तु क्षेत्रफल नहीं रहे। इस सम्दर्भ में उस समय लोगों ने सर्व की भावत तथा भावत की सर्व में बदलने तथा सर्व को सभी क्षेत्रफल के मोक्ष में बदलने का कार्य किया। इस तरह के उन्होंने अपनी ज्योतिषि विकसित की। उन्होंने बात किया कि सर्व का क्षेत्रफल भूया का सर्व करते तथा भावत का क्षेत्रफल सम्बाई में भीलाई का गुना करते बात कर सकते हैं और फिर एक भावत को सभी क्षेत्रफल के सर्व में बदलने हेतु वैदिक युग के प्रसिद्ध ज्योतिषिभिद् बोधायन ने अपना प्रसिद्ध प्रमेय (नौ सप्ते वीक्ष्यतन प्रमेय कहलाता है) दिया जिसमें उन्होंने भावत की मुक्तार्थों तथा विकर्म में एक सम्बन्ध बताया। यह प्रमेय सभी तरह के है जैसे कि

वाइफावीरुह द्वारा कवकीय त्रिभुज के बारे में है। बीजगणन का कर्ना वा—  
 “वायत के विकर्ण उन दोनों क्षेत्रवर्गों को बता सकते हैं जिन्हें सम्बाई और  
 बीड़ाई अलग-अलग बतादेगी। दूसरे वर्गों में, एक वायत के विकर्ण पर बने वर्ग  
 का क्षेत्रफल इसकी दोनों भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है।”  
 बीजगणन न केवल अपने प्रमेय के उदाहरणों से सम्पुष्ट था बल्कि उसने अन्य उन्नत  
 गुरुत बातों के बारे में भी बताया :

$$3^2 + 4^2 = 5^2; 12^2 + 5^2 = 13^2; 15^2 + 8^2 = 17^2;$$

$$7^2 + 24^2 = 25^2; 12^2 + 35^2 = 37^2; 15^2 + 36^2 = 39^2$$

सम्भवतः प्राचीनक कल्पविबुधा ज्ञानन हैलिरीन अंशित में दिया गया है।  
 “यह सम्पूर्ण पृष्ठी क्षेत्र है लेकिन वे बिन्दु का उपयोग कर सकते हैं उसने की  
 मान सकते हैं तथा इस पर मत कर सकते हैं। इसकी गुरुत स्थित रेखा बीच  
 फिट, पूर्वी रेखा 56 फिट और घाघने की स्थित रेखा 24 फिट है। यह सब  
 सहाई बताते हैं (को 90 है)

$$15^2 + 36^2 = 39^2, 15 + 36 + 39 = 90$$

इसी तरह का अवतरण वायत वाद्युत (X.2.3.4) में है।

इस के विकर्ण के लिए  $\sqrt{2}$  का मान तथा इसी प्रकार की अन्य करणियों  
 (Stand) के मान मानने की आवश्यकता हुई जिसके लिये इसी क्षेत्रफल के आयत  
 में बदला जा सके। ये मान प्राचीन वैदिक ग्रन्थ ‘सुख सुख’ में आसम्भ सुद्धा के  
 द्वारा दिये गये हैं। सुख का अर्थ है समी। दूरे व्यापारियों निर्माण के लिए  
 आवश्यक उपकरण थे (i) मन्दी समी जिसे सुख या समु कहते हैं (ii) एक  
 बाँध जिसे वात के रूप में बोका जा सके (वेनु या बंध) (iii) पैर या बंधु जिसे  
 जमीन पर तिरार करके समी से माप की जा सकती थी तथा वात भी वात जा  
 सकता है। सुख बड़ी दूरी वैदिकार्द समी के कल माप की तरह थी।  
 बलि की वस्तु बलिकर्ता की स्तरी से जाने वाली होती थी। इसलिए यह कई  
 दिशा जाता था कि बलि (यह) ऐसी वेदी में की जाय जिसका दक्षन उड़ा  
 पकी जाता हो वो बलिकर्ता की स्तरी से जा सके।

आर्यीन पण्डित के सम्मिश्रित हमारे सभी संकी में अन्तिम परिभाषा-वा  
 विधिनी दी गयी है तथा उपपत्ति के चरणों की उल्लेख की गई है। इसलिए

भारतीय महिलाओं भावी पीढ़ी के लिए बुनियाद की स्थापिति जैसा संभव नहीं है यदि जो कि स्थानीय शिक्षणों, स्कूलों में प्रति उत्पन्न रहता है। इसका संतुलन अनुसन्ध आधुनिक समय के एक प्रमुख प्रयोजनविद् अनुसन्ध द्वारा किया गया है जिसे मैंने देखा है। लेकिन बुनियाद की विधियाँ भारत में कभी भी अक्षयि नहीं हुई। संशोधन युद्ध के समय उपर्युक्त कड़ी में चीन में बुनियाद की विधियों की सराहना होने लगी थी। चीन में अपने स्कूलों में राष्ट्रीयीकरण के प्रयोग की चीनी उपरति उत्पन्न की है। इन पुस्तकों के परवर्ती समालोचक जैसे विपुल्लिपु और भाभी सुन-चिन ने ऐसे स्कूलों का प्रयोग किया है जिससे यह लगता है कि वे विनोदों की तुलना कर रहे हैं उनके लिए विविध रंगों का उपयोग करते थे। चीनी छोटे-छोटे स्थानीय समुदायों में विपरीत लक्ष्यों की उपरोक्त के समर्थन हुए। चीन हुई (1975 ई.) के अपनी 'हू हू कु चाई की रचना का' और 'स्वान का पुनः चिन रंग को' नामक पुस्तकों में अनुसन्धालयक विधियों के प्रति कुछ प्रकाश किया है। उन्होंने इसका वैज्ञानिक प्रमाण दिया कि किसी सामान्य चतुर्भुज के माध्य में छोटे वही सामान्य चतुर्भुजों के वृत्त एक दूसरे के चरम पर एक होते हैं (बुनियाद की प्रथम पुस्तक का 43वाँ भाग)। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय महिलाएं नियमबद्ध नहीं हैं। बिना शक्तिशाली के होने प्रयोगों की विस्तार से जाना सम्भव नहीं था। अनेक विज्ञान तथा शोधपरिच में भी उन्होंने अपने परिणामों का कथनों की कोई उपरति नहीं छोड़ी है। इसका उत्तर यह नहीं कि उन्होंने परिणाम बाहरी लोगों के प्राप्त करके अपने में रख लिया और उन्होंने इन कार्यों की उपरति साक्षिक विधि के बिना या भी थी। भारतीय महिलाएं हमेशा के ही नियमबद्ध, संतुल्य तथा प्रति के दो लोगों को छोड़े जाना था। भारतीय महिलाएं के प्रति यह कहना सम्भव होना कि उन्होंने स्थापिति, शोधपरिच तथा अक्षयि में बिना उपरति तथा चरम में गये ही शिक्षणों का विकास कर लिया। जो बहुत ही अपनी स्वयं ही उनके बारे में वे उन्हें देखकर विस्मय करना आवश्यक नहीं समझते थे। जब ऐसा यह रहा है तो इसका उत्तर बुनियाद के तरीकों की साक्ष्यता को कम करना नहीं है क्योंकि इसके समान मानव इतिहास में दूसरा कोई विज्ञान नहीं है।

मेरे पास शोधमिति (वैसाइस) तथा शोधमिति के क्षेत्र में भारतीय शोधाल के बारे में विवेचन करने का समय नहीं है। भारतीय प्रयोजन की पुस्तकों में शोधमिति की सराहना भी नहीं है। इसके लिए मैं चाहूंगा कि मेरे

विश्व वायव्यविहिर के 'रॉय सिडान्ठिक', ब्रह्मपुत्र के 'ब्राह्मपुत्र सिडान्ठ', बासकर  
 प्रथम के 'महामायापरीय' और 'अथु मायापरीय' और आर्यभट्ट प्रथम के  
 'आर्यभटीय' की कई विगल भारतीय ज्योतिष में बहुत योगदान है। अथव,  
 भारतीय और दुनानी ज्योतिष में बहुत कुछ देने या लेने के लिए है। भारतीय  
 ज्योतिष पर अथव नीली प्रमाण का रखा कारणता कहिय है किन्तु नीली ज्योतिष  
 ने भारतीय ज्योतिष की कई संशयस्थानों को आसन्नकृत कर लिया है।



### 3 प्राचीन भारत की वैज्ञानिक भावना\*

संसारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग के अपने विज्ञान के प्रति रुचक हैं जिन्होंने मुझे प्राचीन भारत की वैज्ञानिक भावना तथा सम्बन्धित विषयों पर तीन व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया है तथा इसे मैंने प्रत्यक्षतार्थक स्वीकार कर लिया है। मैं कोई व्यक्तिगत इतिहस्यविद् नहीं हूँ जहाँ मैं अपनी सीमाएँ जानता हूँ।

विद्यार्थी कई वर्षों से मैं अवसी हो दृष्टिकोण से प्राचीन भारत के विभिन्न कार्यों की, विशेषकर विज्ञान के क्षेत्र की, सामग्री एकत्र करता रहा हूँ तथा अपने कठिण विचारों को प्रकाशित करने के लिए प्रयास भी किया है। हमारे देश में विज्ञान का इतिहास विषय अनिश्चित रहा है तथा हमको अनिश्चित बनाने की विद्या में हम ही में अन्त आरम्भ हुए हैं। उदाहरणार्थ, दक्षिण एशिया में विज्ञान तथा तकनीकी का इतिहास विषय पर नई दिल्ली में नवम्बर मई 1950 में युनेस्को के सहयोग से एक कोटरी आयोजित हुई तथा राष्ट्रीय विज्ञान सभाद्वारा मैं भी इस विद्या में सविनया आरम्भ कर दिया है। हमारे कुछ विश्वविद्यालयों में संस्कृति और सभ्यता के इतिहास के साथ विज्ञान के इतिहास का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित किया जा रहा है।

संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ने हाल ही के वर्षों में विज्ञान और सभ्यता में जीवितों के योगदान के विद्या में पर्याप्त योगदान किया है। कुछ वर्षों पहले मैं इस प्रोफेसर के संशोधन में विद्या कर, विभिन्न देशों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में दिए जाने वाले पत्रों की विज्ञानसभा के दिवस में अपने प्राचीन विचार-विमर्श को किया था। उन्होंने अपने समुद्र करने की योजना मात्र संस्कृत में बनाई—पहला वर्ष मई 1954 में उत्तर, द्वारा अन्य वैज्ञानिक विचारों

\* संसारस हिन्दू विश्वविद्यालय, आराधनी के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग में 1973 में किया गया प्रथम व्याख्यान।

के इतिहास के बारे में था (1956), तीसरा खण्ड वणिज तथा स्वयं कीर्त पुष्पी विषयक विज्ञान के विषय में था (1959), इसके बाद बाकी खण्ड भौतिकी तथा भौतिक तकनीकी, रसायन और रासायनिक तकनीकी, वैज्ञानिक और वैज्ञानिक तकनीकी के बारे में थे तथा अन्तिम खण्ड सामाजिक गुणधर्मों के विषय में था। विज्ञान और तकनीकी में किसी देश के योगदान के साथ-साथ करने के लिए वह देश की भाषा संरचना का परीक्षण, प्रयोग का पुनरीक्षण, उसके निष्कर्षों का समग्र इतिहास तथा दूर और दक्षिण के देशों के समर्थन आदि की योजना में रचना होता है। हमने से बहुत जो आधुनिक विज्ञान और तकनीकी से सुनियोजित है के प्राचीन विज्ञान और संस्कृति के बारे में भाषा प्रक्रियाओं के साथ है। बीता कि प्रथम खुलकर कहते हैं "विचारों और संस्कृतियों के अनेक इतिहासकार आज भी सीधे बंदूक रखना कर लेते हैं कि इतिहास सम्बन्ध के साथ ऐसा कुछ भी नहीं करते हम विज्ञान कहें। यदि उन्हें कुछ अधिक जानकारी हुई हो के यह कहते हैं कि इन देशों में मानवीय विज्ञान तो था किन्तु प्राकृतिक विज्ञान नहीं था। विज्ञान तो तकनीकी ज्ञान था किन्तु वैज्ञानिक विज्ञान नहीं था, या यह कहते हैं कि ये आधुनिक विज्ञान नहीं उत्पन्न कर सके। (प्राचीन और मध्य-युग के विज्ञान का विरोध करते हुए)।" विज्ञान-वेद आधुनिक वैज्ञानिकों के चलचक्रन हमारे पास आज बहुत कुछ है लेकिन प्राचीन देशों के पास ऐसा कुछ भी नहीं था। वर्तमान दशक में बहुत ही ऐसी चीजें हमारे पास हैं जो 50 वर्ष पहले नहीं थी। लेकिन इतिहास की भावना तबों का एकलव्य नहीं है। यदि हम हीन के समर्थन तो इतिहास आत्मत स्पष्ट साथ की सामने जाता है। हम आज भी भी हैं यह हमारे पुरे कर्तव्य का परिणाम है, हमने से कोई भी इस संसार से अलग नहीं है चाहे यह अकेले हो या समूह में। कोई भी संस्कृति पूर्णतया न तो चीनी है, न भारतीय, न तुर्की, न बेबीलोन की या आधुनिक (यूरोपीय या अमेरिकन)। मनुष्य ने सर्वमान्य स्थिति वाले के लिए प्रयास किया है और इस क्षेत्र में विज्ञान आज ही नहीं अविश्व दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय रहा है। यदि एक और किसी राष्ट्र के लोगों ने बहुत ही प्रयास किया है तो दूसरी ओर भी या अधिक राष्ट्रीय द्वारा एक ही भाषा का प्रचलन कर के बोली की समानता सम्बन्धों के साथ किया गया संयुक्त योगदान भी है। कुछ मूलभूत समस्याओं में एक निरन्तर सहयोग भी रहा है। कभी-कभी विरोधी पक्ष का भी सहयोग मिला है। भारतीय अमेरिकियों ने समस्याओं को एक निश्चित मॉडल के अनुसार हल किया, तुर्कानियों ने जिन मॉडल का प्रयोग किया, चीनी चीनियों से भी कई

नक्काई चिन्ह की। खोजबीन करने पर एक ऐसी स्थिति आई जिसमें वे काम के निकट पाई गयीं। आधुनिक विज्ञान में यह वैज्ञानिक बनता है। हम आज की आधुनिक पश्चिमी सभ्यता पर गर्व कर सकते हैं लेकिन प्रायः वा एशियाई वैसी द्वारा किये गये खोजों की मुलाकात नहीं आ सकती। अन्धकारीय युग (ख्रिस्त I, 164) के इष्टा वैदिक युग विषयक कुछ प्रारम्भिक काम का उद्घाटन करते हैं। इस युग के एक श्लोक में लिखा गया है—सूर्यस्य अश्व एवसीयाकुलम् (I, 16.14)—यह सूर्य की दो शीशियों की ओर संकेत है जो एकाग्र से निराले का आशय होकर बलि करते हैं। सामान्य ने मास्क की गुरुवृत्ति के आधार पर राजस का अनुवाद जल के वाहन के रूप में किया है, लेकिन और अधिक स्पष्टता से यह सूर्य के शरीर के रूप में कहा जा सकता है, इनकी गतिविधि आवश्यक होती है (I, 164 : 14)। आधुनिक भाषा में वे सूर्यमन्दन के कर्त्तव्य का संकेत करते हैं। चीनी की सूर्य कर्त्तव्य से परिचित थे। उनके बारे में सीजन का कहना है—सुरोचिनी द्वारा सूर्य कर्त्तव्य के बारे में जानकारी से करीब षेड हजार वर्ष पूर्व से ही वे इसका अंकन करते आ रहे थे। सीरीतमसु सामान्य सभ्यता विख्यात ऐतिहासिक व्यक्ति या किसी वैदिक ग्रन्थों के प्रेरणा लेकर सूर्य, चाँदनी और पृथ्वी की गतिविधियों को खोज करने के लिए कठिन काम किया।

कहान जनों के विषय में उल्लेखता ही वैज्ञानिक भावना है और यह विज्ञान की ओर ले जाती है। किसी एक समय के प्रति हृष्टिकोण सुन-सुन से प्रयत्न होना और समाधान की सम्भावना भी बचने की लेकिन इनके भी महाव्युत्पत्ति है समानता की उद्घाटन। यह खोजों के इष्टाओं ने किन्तु प्रेरक संकेतों नहीं की उनकी जानकारी बढ़ती गई (ख्रिस्त I, 164.4-7)

आदिम मनुष्य की रीति होते किसने देखा ?

काल में क्या विहित है जो व्यवस्था को शासन करता है ? पृथ्वी के नीचे और एक किलता है पशु आराम कहाँ है ? कौन समीक्षकों से यह पूछेगा ?

अपरिचित तथा मन में अनिश्चित से उन वस्तुओं के बारे में पुष्टता है जो देवताओं से भी कियी है।

कौन के हाथ घासे हैं जिसकी समीक्षकों ने सूर्य की शक्ति के लिए चेलावा है जिसमें सभी शक्ति रहते हैं।

ये ज्ञानी के मन में स्वीकृतियों के जगना चाहता हूँ जो (सत्य की) जाली है, ज्ञानी के मन में ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं कुछ रहा, वह एक अकेला था जो इन छह चक्रों को अपने मन में धामे हुए है।

जो इस (सत्य) को जानता है वह दुःख उसे ज्ञान दे, सुन्दर समझाए गतिशील (सूर्य) की रहस्यमय विधि, फिरने अपना: कुछ उसके लिए वह विराही हुई उसके स्वरूप की सेवा के बायीं, उन्होंने साथों द्वारा जल की विद्या है (जिसे द्वारा उन्हें ज्ञान प्राप्त था)।

इस पुनः के वैज्ञानिक-सांख्यिकों की कवि कहा जाता है (जिसे उपर्युक्त चलोमें में मसीही कहा गया है, कवि इन्द्रा, कनीची, बुद्धिचीची, विज्ञान, कभी-कभी वह विश्व की कहा जाता है)। ये उन ज्ञानों के जालकी खोजित नहीं कहेंगे जो इन ज्ञानियों द्वारा समाधान के लिए रहे गये थे। बहुत से प्रश्न हैं जो अभी भी अनुपस्थित हैं। वास्तव में इनके समाधान करने के प्रयास के नाच ही विज्ञान और दर्शन का विकास हो गया। ऐसे ही रहस्यमय ज्ञानों में के एक प्रश्न केर की निम्न पंक्तियों में है—

‘हे बचती ! इस बड़े सेवा की सीमा कहाँ है (जहाँ वे तुम आये ही), उसका आदि बिन्दु कहाँ है कहाँ जान का रहे हैं, सब जान कनी ज्ञान की हमकी पास की तरह छिहराई हो तथा बख्शना द्वारा कनकीने कायल की नीचे पटकते हो (अध्याय I, 168.6)।

बहुत प्रश्नों का उत्तर समय-समय पर मिल-जुल रही की के दिया जाता रहा है तथा किसी एक समय में प्रचलित प्रकृति विज्ञान सांख्यिक संकल्पना उन समय के भौतिक विज्ञानों के विकास पर काफी प्रभाव डाली है और यह बात हमारे पास की प्रकार के हुए होती है : वैज्ञानिक और सांख्यिक। ये दोनों दृष्टिकोण बिना नहीं होने चाहिए। दोनों काट स आसक्त होकर हमें ज्ञान की ओर ले जाते हैं। जो भी इन दोनों खोती के होकर विभिन्न मान्य मक़दे रहे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में अनुभव की और प्रयोगों का उत्तर और सांख्यिक मान्य जाता है। जब एक वैज्ञानिक स्तर विकसित करने का प्रयास किया जाता है विज्ञान द्वारा प्रयोग के तथ्यों को सहसम्बन्धित करके परिचालन प्राप्त किया जाता है। सांख्यिक उपाय में एक प्राकृतिक सामान्य विचारधारा का भी विवेचन के स्वीकृत ऐतिहासिक रूप से दिया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधानतया सकारणादी दृष्टिकोण है

अपने दार्शनिक इन्स्टीट्यूट ग्रैजुओ को समार्कनादी प्रकृति को भी समीक्षा कर सकता है तथा समार्कना और सम्राज्य की सम्भावना पर भी प्रतिक्रिया दे सकता है। किन्तु अर्वासीय प्रकृति इन दोनों इन्स्टीट्यूटों को समझाने-बुझाने वाला नहीं है। सम्राज्य के विस्तार में दर्शन वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना रहा है तथा विज्ञान धीरे-धीरे अनुसंधान में आ रहा है।

इन दो इन्स्टीट्यूटों की विमर्शता को अर्वासीय विचारों की गति के विज्ञान में देखा जा सकता है। सोल्जुकी सरकारों में कीटनिकस विज्ञान, जिसमें पुष्पी की मूर्त के चारों ओर चलकर आवाजें उठाया गया था, सारों की विमर्शता के बहुसंख्यकों को स्थापित करने में उपयोगी सिद्ध हुआ लेकिन यूरोप में इसे 'दार्शनिक मान' नहीं माना गया क्योंकि यह विचार उस समय के उस दार्शनिक विचार का विरोध कर रहा था जिसके अनुसार पुष्पी प्रजापति के केन्द्र में बसाई जाती थी। यदि मनुष्य इन्स्टी का लक्ष्य अपनी पुष्पता की सर्वोच्च उपलब्धि बन जाता है और यदि यह मनुष्य अकेले पुष्पी पर रहे तो मनुष्य वैश्विक और अर्वासीय उद्घाटन मानव-केन्द्रित तथा पुष्पी केन्द्रित (पु-केन्द्रीय) बन जावेगा। इस विस्तृत विज्ञान में यह विचार करना कठिन है कि मनुष्य बीजा प्राणी अकेले एक छतरी पर विद्यमान है। लेकिन कोई यह नहीं जानता कि यह मनुष्य कहीं विद्यमान है।

दार्शनिक संकल्पनाएँ भी समय-समय पर परिवर्तित होती रहती हैं। मध्य युग में प्राकृतिक घटनाओं की सादृश्यता के रूप में देखा जाता था जो अधिकतर जानवरों तथा मनुष्यों के व्यवहार पर निर्भर करता था। उदाहरणार्थ, आकाशीय किशो तथा टूटते सारों की गति की अविश्रान्त प्राणियों की विचारों के रूप में स्वीकृत किया जाता था। इसे एक जीवमूलक विचारधारा कह सकते हैं। वैज्ञानिकों तथा मनुष्यों द्वारा प्रकृतियों को भी मानविकी में भी मनी प्रयोग के अतिरिक्त विचार में प्रथम महान् प्राप्ति आई तथा इसके मानविकी विचारधारा का अन्त हुआ जिसमें सारी घटनाओं की व्याख्या उद्योगिक या सहित जीवी सामान्य मशीनों (मशीनों) के रूप में की गई। आज भी मनुष्य या मनुष्य व्यवस्था की समस्याओं की विवेचना अतिरिक्त मशीनों की व्यवस्था करके तथा फिर इसे रीतिरिक्त या गतिरिक्त विज्ञान के परिचित नियमों पर आरोपित करके की जाती है। वैज्ञानिकों के गतिरिक्त विज्ञान में परमाणु को एक निश्चित बोल में मान लिया जाता है जिसका एक निश्चित वेग, निश्चित गति होती है जो मशीन की दोहरी-छे प्रकृति पर आधारित

है तथा ऐसीय राज्य में एक बसाव उत्पन्न करता है जिसकी बसावा की जा सकती है। कुछ इसी तरह की गति का नियम मूल संसार में आराधियों की गति की व्याख्या करने में लागू होता है। भारतीय खगोलविद् कुछ कम या अधिक इसी आधार पर अपनी बसवाई करते रहे। उन्होंने बस की प्रकृति की परभाव नहीं की, उन्हें मुख्य का नियम नहीं मालूम था। फिर भी उनके पास मरल, विविधीय मंडल या और इस तरह से भारतीय खगोलविदों ने न केवल ऐसीय अवामिति और विकीर्णविति का विचार किया। अतिसुतीनविधीय गति का आधारलिता भी रही। कुछ गति का सूर्य में नहीं बिना के वह कार्य पूरा नहीं कर सकते थे लेकिन वह बस के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है कि वे इस क्षेत्र में किस तरह कार्य करें। समझ, आर्ग्यमेट प्रत्यक्ष और बहुमुख के साथ वह स्पष्ट करते हैं कि भारतीय विचारों में उन्हें अनेकनीय प्रकीर्णता प्राप्त थी। कुछ गति में पूर्णता प्राप्त किसे बिना के खगोलविज्ञान में इसका प्रभावकारी प्रयोग नहीं कर पाते। फिर का उपयोग प्रत्यक्ष और खगोलविद्या में हुआ। विमानेष्ट इसे भौतिक-गणितीय समझाओं में हमारे इतिहास में प्रमुख नहीं किया जा सका। दूसरी, चंद्रमा और सूर्य की गति के लिए बसवाई ही की जा सकती थी किन्तु परमानुओं तथा अणुओं के लिए नहीं। छायाओं की समस्या पूर्ण या अर्धे चंद्र की समस्या के लिए ह्रास लगाया गया लेकिन इन्फ्रालिनी (optics) अविकसित ही रही। समस्त तथा विहित कांच की कुछ-कुछ आवश्यकता थी परन्तु पुष्पने लोगों ने सामान्य खगोल के लिए इन्फ्रालिनी को विकसित करने के लिए आरम्भिक अवामिति तक की प्रयत्न करने की परभाव नहीं की। इन्फ्रालिनी के इन्फ्रालिनी और ऐसीयनीय नहीं बना करके तो उन्हें अन्तरिक्ष क्षेत्र में बहुमता देते, न ही वे सूक्ष्म संसार के रक्षकों को खोज देते सूक्ष्मदर्शी विकसित कर पाये।

है, गणितीय विचार-धारा को काफी सफलता मिली। लोगों के सभी क्षेत्रों में लोगों की सुझावा प्राप्त तथा गणितीय के नियमों को सही सफलता के साथ समझाया भी किया गया। इस तकनीक की उपयोगिता 1870 के लगभग प्रारम्भ किन्तु पर नहीं बनी। ऐतिहासिकता के क्षेत्र में गणितीय विचारधारा को चुनौती थी। 1903 में आइन्स्टाइन ने सापेक्षता का विद्वान्त किया। यह स्पष्ट हो गया कि हम एक बड़े दुन में प्रवेश कर रहे हैं। जिस प्रकार सूक्ष्म भौतिक भौतिकी ने गणितीय भौतिकी का संश्लेषण पूरा करने में कारगरत्व बना रहा उसी तरह से आइन्स्टाइन ने एक दुन की आधारविद्या रखी—गणितीय के प्रकृति के गणितीय वर्णन का दुन। हम ही के सभी में विभिन्न कार्य परिवर्तित हुआ



संस्कृत है। मनुष्य की पहली खोज इस देशी भाषा के शब्द-श्रवण की खोज रही होगी जहाँ ही निष्कृत के लेखक के शब्दों का पूर्ण समर्थन न हो सके। वैदिक भाषा के जन्म, विशेषकर संज्ञार्थ, निश्चित शब्दों से निश्चित विधि के उपरान्त तथा प्रत्यय बनाकर बनायी गयी। वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों की विशेष सम्झों के द्वारा प्रकृत किया जा सकता है और कोसाम्य के वैदिक भाषा तथा इसका शब्दा-शब्दा व्यवहार-व्यवहार रूप से नहीं बँट गया। मनुष्यिक संस्कृत वा वैदिक भाषा अपनी पुरानी और कभी सन्तानों के साथ भाषी (Speaker) के सबसे प्रारम्भिक सम्भार को ही प्रस्तुत करती है। संस्कृत मनुष्य की प्रारम्भिक ज्ञान भाषा भाषा की सबसे कड़ी पुत्री है और मानव के निश्चित प्रमाणाँ के द्वारा यह कहा जा सकता है कि यह सबसे की पुत्री सम्भे समय से चल रही है, परिवार की अन्य छः सदस्याओं ईरानिक, हेलैनिक, इटालिक, केल्टिक, द्रव्युटीनिक और सेटीरानिक में से किसी ने भी कोई साहित्यिक सृष्टि नहीं की। अतः उनके मूल कर्तों को उनकी अपनी पुत्री भाषाओं द्वारा उपलब्ध करायी गयी शब्दों के आधार पर पुनः सृजित करना होगा। कोई भी देशी भाषा नहीं है जो संस्कृत की उसकी पुरातनता और साहित्यिक प्रमाणाँ, व्याकरणिक संरचना की पारदर्शिता और अन्य साहित्यिक तथा भाषा विज्ञान सम्बन्धी विवरणों में निष्कृत करे। यह एक पश्चिमीय काम रहा होगा जब मनुष्य ने अपने ज्ञान-व्याप्त की मनुष्यों की वर्गीकृत करना तथा उनकी भाषा देना प्रारम्भ किया होगा।

कुछ साधारण वर्गीकरण पहले से ही वैदिक ग्रंथों में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ, बहुत सीधे प्रकार के होते हैं : वायव्य (वायव्य से सम्बन्धित, चिह्नित), अरव्य (अरबी) और दक्षिण (वायव्य) (यजुः XXXI 6)। वायव्य वा वायव्य बहुत प्रचलित शब्द हैं— वाय, पीका, बकरी, भेड़ और मनुष्य स्वयं (श्री, अरव्य, अरव्य अरव्य और कुश-अरव्य XLII.9)। वे वायव्य वायव्य बहुत सीधे-सीधे अपने सिन्धी पूर्वजानियों के विकसित हुए। वायव्य मनु से, पीका पीर से, वायव्य से भेड़ मनु से (एक वायव्य अरव्य वायव्य) और बकरी कारण से (देखें यजुर्वेद XIII. 47-51)। एक उद्भिदास के लिए कलम काष्ठान (VII. 5.2, 32-36) देखें। मनुष्य द्वारा अरव्य मनुष्यों को वायव्य करने अपने परिवार का कलम बनाना किन्ना कलम कर रहा होता। इन परिस्थितियों को किन्ना में यह नहीं कह रहा है कि आधीन समय में उद्भिदास का किन्ना बन चुका था और कि वायव्य और उनके परिवारियों ने हजारों समय में किन्ना है। लेकिन यह सब है कि मनुष्य मनु से ही उत्पन्न हुआ और फिर उसने पीर, वायव्य, वायव्य और अरव्य को



कोई, गान, भेड़ और बकरी के रूप में वास्तु बनाया : वास्तु बनाने की प्रक्रिया कृत्रिमता के अन्तर्गत है। इस वास्तु बनाने की प्रक्रिया के बाद मनु सदा-वदा के लिए सुख हो गया (मनुम् पशुम् मेधमन्ते क्षुण्ण इति किम्-पुनरो न मनु किम्-पुनश्चमन्ते क्षुण्ण इत्येष्टम्-मरण वा० VII. 5.2.32)। यहाँ किम्पुनश्च वा सर्व द्विवक्ता वा मनुष्य यहाँ अस्तितु मनुष्य के समान ही मनुष्य सेना मनुष्य (apexiam) है। एक अन्य सूची में सात वास्तु पशुओं का वर्णन है—कोर, पीक, भेड़, बकरी, खम्बर, गधा और सातमी (मरण० वा० 3.1.20, XX 5.1.8)।

मनुष्य ने न केवल विभिन्न अंशली पशुओं और आसवरी के नाम दिये (मनुर्वेद का चौतीसवाँ अध्याय इन्हीं पशुओं के बारे में है) अस्तितु मनुर्वेद के अध्याय 18 में दो बड़ी सम्भावनी विभिन्न मनुष्यों की वास्तुओं का नाम रखने के उपयोग में लाई गई : हममें छातुओं, अमाओं, समक और इसी तरह के पशुओं और वस्त्रों की सूची है जो वस्त्रकर्म में काम आती थी तथा एक से एकदूसरे तक विषम संख्याओं, चार के गुणकों के रूप में  $4 \times 12 = 48$  तक की संख्याएँ हैं। पुनः इसी अध्याय में अनेक प्रकार की वाची, रीली तथा लड़ों के बारे में भी सूची है। यह विषय अत्यन्त आश्चर्य (देखें मनु० XVIII. 27) के लक्ष्ये अन्य में विस्तार से दिया गया है।

यै इस काल की वास्तवीय क्रियाकलापों के इतिहास का सबसे महान् काल साक्ष्य है जब मनुष्य अपने परिचित की प्रशंसा करने तथा और उसने जारी सामग्री की दो श्रेणियों में बाँटा (1) मनुष्य के दृष्टा उपयोग की वस्तुएँ (2) जलकी वस्तुपयोगी वस्तुएँ। ऐसा करने समय यह किनी तरह के यह ज्ञान था कि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो उसके उपयोग की न हो। उसने पाया कि वस्तुएँ सृष्टि ही उसी के लिए हैं और नहीं सब कुछ है। इस विचार से एक तरह का विवेक विज्ञान वा तकनीकी कह सकते हैं। ज्यों-ज्यों संस्कृति आगे बढ़ी, मनुष्य ने वास्तुओं की दो श्रेणियाँ वाली (1) के जो मनुष्य के लिए उपयोगी तथा प्रकृति में उपलब्ध थी (2) दूसरी के जिन्हें उपयोग में लाने के पहले कुछ सुधार की आवश्यकता थी। इतना ही नहीं, प्रागैतिक समय में मनुष्य ने यह ज्ञान प्राप्त किया था कि (1) कुछ वस्तुओं की हल्क, सैर वा मुँह के उपयोग से प्राप्त किया जा सकता है (2) अन्यो के लिए उसे किनी औजार की आवश्यकता होगी। इसके औजार पुन (Tool apocly) आरम्भ हुआ। वास्तवता का ज्ञान मनुष्य 'औजार-वास्तवी' ही था। पहला औजार लोहा लहर, काटने वा लोढ़ने के लिए कुलीना

नामर, बल्ल की लकीर/नामर का दुकड़ा रहा होना । लकीर चल लीकने का गुराणा के लिए रही होनी । अनुपम अन्य आलियों के लिए है क्योंकि वह बीमार का उपचार करता है । कुछ वर्षों पूर्व में पूर्वी अफ्रीकी देशों में क्या वा जहाँ के संस्थापकों में हमने के बादुरी देशी जिसके आहार पर जो- लीकी ने आधुनिक आना या विभिन्न मानव की बकारों हुए पूर्वी अफ्रीका की मानव के प्रथम उद्भव का स्थान होने का दावा किया है । मैं भारत के लिए इस तरह के देशों में यदि नहीं रहता, मैं यह कहना चाहूँगा कि हमारा विकास वैदिक युग से हुआ और बकी बीना एक हम बीमार-वृद्धि के दर मने ।

बादुरी का एक ब्लोक देशी (Desi) या सेन्टी (Santi) जैसी संख्याओं का ब्लॉक देता है (XVII . 2) तथा इसके सम्बन्धित विज्ञान देखातिवि है । इस तरह के 10 वा उसके 12 पाठ तक (10<sup>12</sup>) गिना जा सकता है । मैं यहाँ पवित्र की संख्याएँ, बकाले नहीं जा रहा हूँ । मैं संख्याओं की दुकड़े विचार के बताया चाहूँगा । आधीन भारतीय समाज अत्यधिक संख्या-वृद्धि वाला बन गया, अपनी संख्याएँ पुनःपुनः सत्य हों तथा लीकी ने संख्या पर आधारित विचारधारा में यदि ऐसा आरम्भ कर दिया । जैसे किसी अन्य देश के लोगों में संख्याओं के प्रति इसकी आकर्षित नहीं देखी । उन्होंने अपनी संख्या आधारित पद्धति निकाली । हम व केवल वैदिक संस्कृतियों में अतिशु स्थान-स्थान पर इन संख्याओं के बहुवचन बचचल पाते हैं । यह वृद्धि काढ़ान और उपनिषद् युगी में भी बनी रही । मैं कुछ दूरान्त यह विचारने के लिए भूँसा कि किस बीना एक संख्याएँ देश के समाज में बहुवचन बन गयी थी ।

देवता और असुर दोनों अपनी श्रेष्ठता के लिए लड़ रहे थे और वे हमने निवहारे के लिए एक प्रकार सहजत हुए : "हम एक दूसरे के वाली या पवित्र सभी द्वारा जाने निकलने की कोशिश करें । जो हमारे कोले गये हमों का पुन अर्थात् पुनिकल-लकीलन नहीं बना पायेगा उसे हारा हुआ मान लिया जायेगा ।" देवताओं ने सबसे पहले इन्द्र से आरम्भ करने को कहा ।

इन्द्र ने कहा—'एक' मेरे लिए । असुरों ने कहा—'एका' हमारे लिए । इन्द्र ने कहा—'द्वि' मेरे लिए । असुरों ने कहा—'द्वि' हमारे लिए । इन्द्र ने कहा : पंचः, असुरों ने कहा—पिचः, इन्द्र ने कहा—पचवारः, असुरों ने कहा—पचतलः । इन्द्र ने कहा—पंच, इस पर असुरों की गुम गहीं मिल पाया । भार के बाद पाँच संख्या अपनी के जो लीकी किनी में एकलीनी है और चल लक के अंतर लक गले ।

और-और सँभारों निश्चित विचारों और देवताओं से जुड़ी गयी। यजुर्वेद के नौ अध्याय में इस तरह तरह के उल्लेख पाते हैं : एक अक्षर के अग्नि के प्राण की ओर, दो अक्षरों के अग्नि के दो पैर वाला वज्र की ओर, तीन अक्षरों के विष्णु के तीन लोक की ओर, चार अक्षरों वाले ब्रह्म के सोम के चार पैरों वाला जानवर की ओर, पाँच अक्षरों की मातृ के पुत्र के पाँच विचारों की ओर, छः अक्षरों की मातृ के अग्नि के ओष्ठ की ओर, सात अक्षरों के अक्षर के सात वज्रों वज्र की ओर इसी तरह आदि की (यजु० IX. 31-34)।

अक्षर (संख्या)	देवता	अक्षरों का विषय
1	अग्नि	प्राण
2	अग्नि	वज्र
3	विष्णु	लोक
4	सोम	जानवर
5	पुत्र	पाँच विचार
6	अग्नि	छः अक्षर
7	अक्षर	सात वज्र

आयुर्वेद के सँभारों संरक्षकों के इसी सम्बन्ध हो गयी कि वे कीटों की संख्याओं को बताते लगे। इस प्रकार ऋतु, अन्न, छः संख्या का वर्णन कर गवा, वाज्र वज्र (सात वज्र) प्राण का पाँच, प्राण पाँच आदि, आदि। दूसरी ओर विभिन्न वैदिक ग्रंथों में मिली गयी संख्याएँ रहस्यमय मन्त्रों के लिए भी कदा बहुत स्पष्ट या निश्चित नहीं थी। संख्याओं का यह रहस्य अब भी बरतत है।

यजुर्वेद का प्रथम अंश 3 तथा 7 रहस्यमय संख्याओं से आरम्भ होता है। ये क्रमशः परिष्कृत-विष्णु अक्षरि विष्णुः अक्षरि दूर आहुति और वज्र विष्णु सात है। यजुर्वेद में भी छि लक्ष विष्णुविष्णु लिखा है विष्णु की तीन पुत्रि वसन्ती (1.191.13) और छि लक्ष विष्णुविष्णु अक्षरि तीन पुत्रि सात मन्त्र (1.191.14)। यजुर्वेद के एक स्थान पर नर-नारी संख्या: (XIII.1.3) का तीन-सात वज्र आता है। विष्णु अक्षर का अर्थ तीन के सात, तीन वा सात, तीन बार, मूर्त का तीन वज्र सात ही संख्या है। ये बहुत ही प्रारंभिक विषय

संख्याएँ हैं। यदि विन्यासः परिचरित विनयकपालि विधतः को तीन साठ के कई संख्याओं के रूप में रखें तो इनमें बहुत ही आश्चर्यक भिन्न प्रस्तुत होता।

विन्यासः 3 से 7 तक की विनय संख्या का जोड़

$$\text{तीन से साठ} = 3+5+7=15$$

$$\text{तीन गुने साठ} = 3 \times 7 = 21$$

$$36 \times 10 = 360$$

360 एक वर्ष में दिनों की संख्या है, 360 और इसके गुणक तथा उपगुणक द्वारा विन्यास में महत्त्वपूर्ण घुमिका निभाते हैं। साठ और दिनों की संख्या कुछ निश्चयकर 720 वाली पत्नी है। आरम्भ में हवन वेदिका बनाने के लिए विभिन्न पक्षों में रखने के लिए ईंटों की संख्या का कोई कुछ नियम नहीं था और इसीलिए परिचालन असम्भवतक थे। जब देवताओं से प्रजापति से सामंजस्य किया तो उन्होंने कहा—'मेरे पक्षी कर्षी (सर्वांग कर्षाणि) को नीचे साठ रखो (मेरे ऊपर रखो) (सतत = शा = X.4.36, तुमसारे कर्षवेद के विनय कपालि में) लेकिन (मुझे) या तो बहुत बड़ा बनाओ या शेषपूर्ण ही छोड़ दो, और इसलिह तुम अमर नहीं बनोगे।' और इस पर को जलाह भी नहीं बह इस प्रकार है—

तीन की साठ केरने वाले ऊपर (परिचरित) रखो, तीन की साठ बहुमूर्ति ईंटें और इसीस इसके ऊपर, और एक हजार साठ की ओकभुव ईंटें रखो और फिर तुम मेरे ऊपर कर्षी को रखकर अमर हो जाओगे (सतत = शा = X.4.3-8)।

इस प्रकार संख्याएँ 360, 10,800, 36 के सभी प्रजापति की (108 = 36 × 3) पूर्ण संख्याएँ हैं।

अग्नि वेदिका की पत्नी है (संवासरौ ह त्वेवेदीर्धमितीत्यतः—सतत = शा = X.5, 4.10) जेता कि इस चन्द्र में हम पाते हैं:

"लेकिन वास्तव में हवन वेदिका भी वर्ष है, सभी इसे केरने वाले ऊपर है, और वे 360 हैं, एक वर्ष में इसलिह 360 रातें होती हैं, बहुमूर्ति ईंटें संख्या में 360 हैं इसलिह दिन भी 360 हैं और 36 ईंटें को ऊपर हैं (यथा—को 726 बहुमूर्ति ईंटें बनाने के लिए आवश्यक हैं) के 13 नहीं है।"

पुनः इसमें वैदिकगर्भी में 21 बहुविवी (X.5.4.11) बटाई गयी है क्योंकि  $21 \times 36 = 756$ , इस प्रकार वलोक बहुविवी मात्र 36 बटाई गयी है (निरुपणः में शामिल) : पुनः इसका कार्य 720 से 36 अधिक इसलिए  $720 + 36 = 756$  : ये सभी अवतरण 36 दिनों के सम्मानित वेदपुत्र न होने की ओर संकेत करते हैं :

अवतरण वाङ्मय के वाङ्मयों काय में वर्ष (संक्रान्त) की दृष्टि माना गया है : एक वर्ष में 360 रातें होती हैं इसलिए मानव शरीर में 360 हृदयवर्ष हैं, पुनः एक वर्ष में 360 दिन हैं अतः अनुष्ठान में मानव की शीत की मात्रा है (अवतरण वा. XII. 3.2, 3-4) : इस अवतरणक कल्पना में पहले के लोग इनके विश्वास में कि उन्होंने मानव शरीर की हृदयवर्षों की गिनती की :

विषय संख्याएँ विशेषतया यदि वे एक ही (1, 3, 5, 7, 11, 13) की उनका अपना साकारण होता है : देखी गयी संख्या 5 है : दूसरी संख्या तीन है : सात, वेदपुत्र आदि अन्य संख्याएँ हैं : इनके हाथ में वेदपुत्र तद्विषय पाँच जैनियों हैं तथा तीन जोड़ हैं और इस तरह से बीजक शास्त्रों की संख्या अनेक वर्गीकरणों के अनुसार 1, 3, 5 या 11 हो सकती है तथा इनमें (I) प्राण (II) प्राण, अमान, अमान (III) प्राण, अमान, अमान, अमान और अमान (IV) प्राण, अमान, अमान, अमान, अमान, नाय, कुर्म, कुर्म, देवता, अमान, अमान तथा तीन (11 रातें) कहते हैं : हृदयवर्षों की पाँच हैं और इसी तरह के कार्य करने के लिए भी पाँच संन हैं : अतः अनुष्ठानाधीन मान्यता का, रत, पाँच, वर्षों और वर्षों की भी पाँच होने चाहिए और यह भी नहीं किना जाता है कि इनमें या सुद्धों (वाङ्मयीय तत्वों) की संख्या भी पाँच होनी चाहिए : 'मोन सूत्र' में तो इस तर्क की सति ही गई है जहाँ हम पाते हैं कि राम और निराम, मानविक अवस्थाएँ (इत्यः संक्रान्तः), कौशिकों की संख्या भी पाँच है : नीतम में विषयवर्षिक तर्क में पाँच अन्य प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपमय, निरूपण बताते हैं और हमारे यह भी देखा कि वाङ्मय बनाये गये वस्तु भी पाँच हैं और पाँच बहुविवी का निदान्य भारतीय मतिव्यक्त में इसका प्रभाव ही एका (वाङ्मयीय प्रभावों हैं) कि इनके इस देश में स्थापन मानव के विकास की रोक दिया : यूरोप के संक्रान्तियों का अवतरणक-वृत्तिकीय विकसित कर दिया तो इसे अवतरणक संक्रान्तियों के मुक्ति मिल गई और इनके अन्तर्गत की अवस्थाएँ वस्तुतः अनेक, कईमान सामाजिक तत्वों की सुद्धा के साथ निष्कर्मित, अवस्थाएँ तथा विषयों एवं अवस्थाओं के लिए अवस्था में माना जा

ब्रह्मता वा । ज्यों के विमल में भी हवायी संकल्पनाओं में संस्कारों बहुवचन  
बनी । हमारा सर्वोत्तम विद्वान्त एक आधुनिक मनोवैज्ञानिक विषय है जिसमें तुल्य  
बाह्यीय वचनित राजानुभव लक्षण्य रहे है ।

संस्कृत की बहुत सी ही जिन कीटों जिनमें दो छोर और बस  
है । इनके नाम सत , रजस, तमस है (भूति में इन कीटों के संस्कार, वृद्धि के  
विशेषीकृत, कृत्य, गुण के रूप हैं) । विद्वान्त विद्वान्त के रूप में है जो रीति  
में बाह, कस, निरु के साथ से जाया जाता है । दीर्घकाल से यह बात रोषों की  
बहुवचन और इनके उपचार में लक्षण्य रहा है । यह बात मानव की एक बाह्यिक  
विषय माना जाता था । लेकिन जीवविज्ञान की आधुनिक प्रगति सभी को यह सब  
हमने मानविक प्रगति आरम्भ किने (सामान्य कल्पनात्मक, कल्पनात्मक  
अ-मात्रात्मक विचार हमें दूर तक नहीं ले जा सकते थे । हमारी विज्ञान प्रगति  
की दूर तक नहीं ले जा सकते थे) ।

संस्कृत विद्वान्त का एक रोचक उदाहरण विद्वान्त विज्ञान है । श्रुति में  
एक बहुत ही रोचक वृद्धिवादी श्लोक है—अथर्वि श्रुति, ज्यों, जस्य वावा, इ  
श्रीं अथर्विवावा (IV, 58-3)। यह वृद्धि में भी है जवा निरुक्त (XIII.7) के  
विषय में इसके ऊपर टिप्पणी की की है । इस श्लोक का साहित्यिक अनुवाद  
इस प्रकार—

“उपनिवार नीचे है, तीन पैर है, दो फिर है, सात हाथ है, (बाह की)  
विद्वान्त नहीं करते कल्प और से बनेता है, सर्ववर्तिमान अनुभव में ज्ञेय कर  
गया है ।”

कुछ वर्षों पहले जब दो संस्कार गया ही वेले एक श्रुति में वृद्धि देखी थी  
वेले वेले के रूप में थी । एक और नीचे वाले श्रुति का श्रुति भी श्रुति में है ।  
विद्वान्त के विषय श्रुति के अनुसार चार शीत चार पैर है, तीन सबल—श्रुति  
मात्रात्मक, तुल्य—ये तीन पैर हैं । सर्वोच्च और सर्वोच्च दो फिर है (जो किसी  
अनुभव के श्रुति-कृत शीत हैं), सात ज्ञेय श्रुति, श्रुतिक, अनुभव, वृद्धि,  
पक्षि, विद्वान्त और वृद्धि से सात शीत है । तीन ज्ञेय श्रुति, ज्ञेय शीत  
श्रुति है । सर्वोच्च श्रुति, वृद्धि (वर्तिमान), श्रुति (वर्तिमान) सात है ।

श्रुति में श्रुति के साथ श्रुति में इस श्लोक का विशेष  
श्रुति के आधार पर किता है । श्रुति के चार प्रकार नाम, मात्रात्मक, उपर्युक्त,

निवाह, चार भीमे हैं, तीन काश पुत्र, अविम्व और सर्वमान तीन वीर हैं । वो  
 ब्रह्मा की इच्छा निम्न और कार्य को सिर है । वात विम्वित्वा वात हाथ है । ये  
 तीन स्वामी—कीमा, कमा व सिर हाथ बड़ा है । कुछ मेखक चार भीमों की चार  
 ब्रह्मा की वाणी वरा, वववित्, माववरा, वीवरी बहाते हैं जववि कुछ वुववत्,  
 विववत्, वववरी, निवाह को चार भीमे बहाते हैं । (कवववि वाव्वविमिता वववि  
 वावि को वाववा वववि वववि में वुव के ववववि में भी की वा ववववि है) । चार  
 विववत् वववत्, वुववत्, वववि, वववि चार भीमे हैं । ब्रह्मा, ववववव्व और वववव  
 (ववव, ववव और कार्य के ववववव) तीन वीर हैं । विव व ववव की सिर है । वात  
 विववि (ववव के वात वीर) वात हाथ है । वा वात वववव (ववव-ववव ववविवव)  
 वात हाथ है । वह तीन स्वामी वुववी, वववववव और ववववव, वर वीव है वा  
 वीव ववी और वववव तीन स्वाम ववव वर विवव वर से वीव है । वव ववव  
 के वाव ववी वावी है वो वव ववव ववव है ।

वावववव, ववव और ववव मेखवी ने ववी वववि को ववव-ववव विवव  
 के वववव ववविवव विवव है ।

वववववी की वववववव से वव ववव वव (वववववी के वव वी) वा  
 ववव वव वी ववव वी विव विवव वववववी के वीर वव वववववव वव  
 वव है । ये वव ववव वव की वीववीरव ववववव (ववके वववववववव वववव  
 वी) ववववव ववव ववववव । ववव को 1—ववववव, 2—ववववववव,  
 3—ववववव, 4—वव वव, 5—वववव वव वीववी के वव वव है । ये  
 वव ववव ववव है । ववव वव वी वव ववव वाव है कि वुव वव वी  
 वव है, वव वव वव है, वव वव है और ववव वव वव है । ये ववको  
 वव वव वववव वव वव है

ववव	वुवव	वववव	वव	ववव
वववव	वुववी	ववी	वववव	ववव
वववववव	ववव	वववव	वव	ववव
ववववव	वववव	ववववव	ववव	वववव
वववव	ववव	ववव	ववव	वववव
वववव	वववव	वववव	वव	ववव

इस तरह के कथक श्रुतियों (बैदिक संहिताओं) में भी पाये जाते हैं और वे वाङ्मय रूपों के भी हैं। विभिन्न युगों में पात कर्म, पात स्मरण, रंघों, देवताओं और सोमों के कुछ रूप हैं।

वाङ्मयों की संख्या	रूप	स्वर	गोत्र	देवता	रंग
24	पायत्री	बहुज	अश्विमेध	अग्नि	सित (सहोदर)
28	उष्णिक	गृध्रध	भालव	सविता	भारंग
32	अनुष्टुप	संसार	नीलध	सोम	विशंग
36	बृहति	मध्यम	अग्निध	बृहस्पति	कुम्भ
40	पंक्ति	पंचम	मार्गध	मित्रवसुध	नील
44	विष्टुध	द्विज	कीर्तिक	इन्द्र	सोहित
48	लवति	निराध	वसिष्ठ	विश्वेदेवा	नील

वाङ्मयिक मनोवैज्ञानिकों को कुछ भी सोचते थे उनके किसी विभिन्न चरित्र (देवता) के जोड़ते थे। कदाह्वर्यार्थ, लवध के वेदांग व्योमिन में वाङ्मयों की देवताओं के जोड़ा गया है (यसु= 32-33)। कदाह्वर्यार्थ, इतिहास के देवता अग्नि है, रोहितो के ब्रह्मपति, सुवसिष्ठ के सोम, वाङ्मय के बृह, पुनर्वसु के अग्नि, पुष्य के बृहस्पति आदि। यजुर्वेद के यजुषों के वर्णन (अध्याय 20) तथा अथर्ववेदों (अध्याय 30) के वर्णन में भी कथक लगे मिलते हैं। इस वृद्धि ने वा सी कर्मकाण्ड को जन्म दिया वा यह कर्मकाण्ड से उत्पन्न हुई क्योंकि भारत में कतिपय महान विद्वानों का जन्म अनुष्ठानों के द्वारा।

हमारे वाङ्मयिक मनोवैज्ञानिकों का अपना तरीका था और वे कोई न कोई लक्ष्य विकसित कर रहे थे। अतः वैज्ञानिक ग्राह्य रूप में भारत के मन में लक्ष्य की स्वीकार किया गया तथा यह एक निश्चयवाक्य लक्ष्यार्थ था। यह लक्ष्यवाक्य है कि भारत संहिता ने इस प्रजापति का उपयोग आरोग्य विज्ञान में किया, यह वाङ्मयिक और लक्ष्य के विषय बताया है और विकसित विज्ञान के लिये यह कदाह्वर्यार्थ द्वारा लक्ष्य को प्रस्तुत करता है। मानव इतिहास में जो लक्ष्य पहले महान लक्ष्यवाक्य हुई यह एजेंस पुनर्वसु की अवस्था में हुई जो जीवनियों पर लक्ष्य लक्ष्य की वैज्ञानिक भाषा का अभाव है।



## 4. प्राचीन भारत में परिमात्रात्मक संकल्पना\*

**भा**

रत के सुदूर काल का दृष्टिगत विविधों की अनिश्चितता के कारण अस्पष्ट है। यह अनिश्चितता राशियों या गताशियों में नहीं बल्कि

गृहकालियों में है। केवल दो विविधों देखी हैं जो सूत्री के रूप में काम आ सकती हैं—वहावाण्ड का मुड़ और चन्द्रगुप्त सौर का वासन काल। जी० बी० बी० अवलोक ने 1945 में अपने एक लघु ग्रंथ में इस विषय की व्याख्या की है और वे इस विषय पर यह लिखते हैं कि (1) कुछ मुड़ 3016 ई० पू० हुआ, कुछ खगोलीय शिकों के आधार पर मुड़ मार्गशीर्ष के प्रथम अश्वि के पारहूने दिन आरम्भ हुआ, (2) 10वें दिन शीघ्र कार्तिका पर सेते, (3) 18वें दिन पुनीषण गारा गया और यही मुड़ का अन्तिम दिन था, (4) अतएव यही दिन लोचनाव्या के वासत लोटे (5) अतएव ने पुरुष मन्त्र में चन्द्रमा निवत होने पर लोचनाव्या आरम्भ की तथा 43वें दिन वासत लोटे अब चन्द्रमा आरम्भ मन्त्र में था (6) शीघ्र पूर्व के उत्तरायण होने की आशंका कर रहे थे ताकि उचित समय में अपना शरीर त्याग कर सकें, यह चन्द्रमा था यहीने के प्रथम पक्ष के 8वें दिन हुई (मुड़ के आरम्भ में 30वें दिन) (7) दो माह बाद वैश पुनीषाशी के दिन अश्वमेध यज्ञ कर बोका छोड़ा गया जो साध, यहीने की पुष्या की दो वर्ष 10 माह बाद पीटा (8) वार्षिक यज्ञ 2 माह बाद समाप्त हुआ तथा राश्याधिक पक्ष की प्रतिपदा की हुआ, (9) मुड़ से दो माह पहले (मकर में) तीन महल-पूर्व चन्द्रमा बलि हुई (अ) पूर्व और चन्द्रगुप्त सौरों 13 दिन के अन्तर पर रहे (वाक्यान्वयः चन्द्रगुप्त 14वें, 15वें और 16 दिन होता है), इस समय यह अपवाद था कि यह 13वें दिन पड़ा (ब) एक पुष्कलतारा पुरुष मन्त्र में अन्तः की मकर में दिखाई दिया (ग) बृहस्पति और शनि विवाहा में एक वर्ष तक रहे (यह हर 60 वर्ष पर होता है)। यह भी स्मरणीय है कि चन्द्रगुप्त सौरिक

की पूर्वजाओं के दिन बड़ा था और यदि हम यह मानें कि यूरीयहम यमरयहम के पहले रहता है, तो हम यह आश्चर्य की अपेक्षा की बका होता। मरुवर के पूर्व बिजा-नवाली में और राहु नवाली में वा जो रहने की निश्चितता रसीता है। इस तीन घरवालों को संतुष्ट करने वाला वर्ष 3016 ई० पू० है।

जानक जान सभी जानते हैं कि कारोलीय बीकड़ों के आधार पर एम० बी० सी० में महाभारत का साल 5307 ई० पू०, राम बी० बी० में 3102, शार० बी० बी० में 2787, कलसीकर में 1931, राममाल में 1424, पाकिर में 980 ई० पू० निर्धारित किया है। इनारे पाँच अक्षरों में अक्षरमय होने का कोई कारण नहीं है क्योंकि महाभारत के पाठ में दिये गये अक्षरों देशों पर आधारित थे न कि कल्पना पर। पुनः मैं दूधकेतु का दिखाई देना कारोलीय तथ्य है परन्तु दूधकेतु का ज्ञान विरति का पूर्ववृत्तक रताया संश्लिष्टता है जो भारत में बुधविधि के आने पर आधारित हुआ जानी यह एक मध्य-पूर्व संस्कृति है।

महाभारत युद्ध की विषयक विषयता जानक सी० बी० सी० में नुता द्वारा की गयी है किन्तु भारतीय अतीत विज्ञान में योगदान प्रविष्ट है। इन्हीं सनातनता के अन्तर्गत की समाप्ति की संकल्पना की अवलोकन करके महाभारत युद्ध को 2449 ई० पू० निर्दिष्ट किया है। इन्हीं विद्वत्ता है कि पाँचव 4 अक्षर 2462 ई० पू० वर्षाव करने गये और यह निर्दिष्टन पूर्व के दक्षिणावन होने के पूरे सात साल (चार) बाद 10 जनवरी 2462 ई० पू० तक था। बुधविधि के परिष्कारन संस्कार की तिथि 11 मार्च 2449 ई० पू० निकलती है, जो भीम की मृत्यु के दो वर्ष दो साल बाद थी। युद्ध वर्ष 2449 ई० पू० से 5 वर्ष पूर्व वर्षा 2454 ई० पू० में कलिपुत्र प्रारम्भ हो गया था। अक्षरकनी के अनुसार बुधविधि का पुनः प्रारम्भ काश के नाम से जाना जाता था।

जैन परम्परा (द्विचन्द्र, 1088-1170 ई०) के अनुसार अश्वमेध के राजा बनने का समय महावीर युद्ध के 155 वर्ष बाद है लेकिन इस महान साम्राज्य की मृत्यु अनिश्चित है। अन्य परम्परा के अनुसार भीम साम्राज्य विक्रम युग के 255 वर्ष पहले 313 ई० पू० था। पुनः विचारक हम यह कहते हैं कि यदि हम विषयविशेष विधियाँ स्वीकार कर दें तो निश्चित तिथि से अक्षर-विधि

अनुसूचित जाति—	सदस्य	320-300 ₹० पु०
विधुसार		300-275 "
अधीक		275-240 "

सहायक आचार्य का सन्त सभस 200 ₹० पु० हुआ । वैधानिक उपसमितियों का कोई सुलझावन नव कान्ही के अहित विधिकरण पर निर्भर करता है जिसके आधार पर हम सुझावें प्राप्त करते हैं । निम्नलिखित सारणी से ऐसे कान्ही की कान्ही मिलती है :

### भारतीय कान्ही का विधिकरण

सलेकर, अनुसूचित और अन्य सभासके	के० आर० दीक्षित और जी० जी० सार	के० एन० सुमन	जी रे, एस० एन० होरा तथा आर० जी० सेरीवा
--------------------------------	--------------------------------	--------------	--

### वैदिक सारणी

400-1000	6000-1300	4000-2000	2500-2000
₹० पु०	₹० पु०	₹० पु०	₹० पु०

### उपनिषद्

1000-600	1700-700	—	—
₹० पु०	₹० पु०		

### पञ्चांग विषयक कान्ही

कान्ही 600 ₹० पु०	—	1400 ₹० पु०	—
वैदिक 200 ₹० पु०	—	—	—
सूर्य प्रकाश 400 ₹० पु०	—	500 ₹० पु०	—

### अधोनीय कान्ही

## अर्थसाधन

100 ई० पू०	—	—	400 ई० पू०
------------	---	---	------------

## सुश्रुत

100 ई० पू०	700 ई० पू०	—	600 ई० पू०
------------	------------	---	------------

## भारत

100 ई०	700 ई० पू०	—	600 ई० पू०
--------	------------	---	------------

विन्टरहिट्ज द्वारा विवित पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन विन्टरबर्' के आधार पर भारतीय वैज्ञानिकों के निम्न विधियों की समीक्षा किया है -

अन्वेष	2000 ई० पू०-1500 ई० पू०
संहिताई तथा साक्ष्य	1500 ई० पू०- 800 ई० पू०
पुराने सन्निवद्	900 ई० पू०- 599 ई० पू०
भारत	— 100 ई०
भारत संहिता (पुनः)	100 ई० लेकिन बाद में परिचित
सुश्रुत संहिता	200-500 ई०
वेदों के अन्वेष	500 ई० पू०
सुश्रुत पुनः	500 ई० पू० और बाद तक
सर्वसुत	600 ई० पू०-200 ई० पू०
सुश्रुतसुति	} 200 ई० पू०-200 ई०
सहाय्यता	
सामाज्य	

वही वेद द्वारा ही सभी विधियाँ जोकेन कीदम की विनविधों पर आधारित हैं । यदि महाभारत का कुछ 2449 ई० पू० तथा तथा महाभारत की रचना 200 ई० पू०-200 ई० में हुई तो सम्पूर्ण भारतीय सांख्यिकी अधिकतमकतम

जाते हैं। सबसे पुरानी तिथि जिसके विषय में सभी लोग निश्चित हैं वह सम्य-  
घट प्रथम का जन्म 476 ई० (कलियुग संवत् 3577) है। उसकी प्रसिद्ध कृति  
'सर्वभरीव' है जो 23 वर्ष की अवस्था में 499 ई० में लिखी गई। उन दिनों  
एक युग में 40 वर्ष होते थे। वैदिक काल में युग में चार वर्ष होते थे तथा बाद  
में तीन वर्ष का युग अधिक प्रचलित तथा सुविधाजनक हो गया (वीक सैन्ससरम्  
न युगसप्तसम् प्रजापति) (पञ्च० 1)।

निकन्दर की विषय के माध्यम से चीकों के साथ का सम्पर्क भारतीय  
इतिहास में उत्पत्ती हो महत्त्वपूर्ण घटना है जिसकी कि विगत ब्रिटिश शासन काल  
के समय युरोप के साथ भारत का सम्पर्क। दोनों देशों में अनेक बातों का आदान-  
प्रदान हुआ लेकिन जिसमें तथा स्वभाव की अभिव्यक्तता के कारण एवं प्राचीन काल  
में जब तक नहीं आ रहे वर्षों की छुट्टा के अभाव से, वे अनेक बाने जिन्हें भारत  
कर सकता था उनमें सम्मिश्रित नया रहेगा। युरोपीय विचारकों का यह मानना  
है कि "भारतीय सभ्यता विद्या अनेकवीरुषाई विज्ञान की सन्तान है"। यह  
पश्चिम में माना जाता रहा है कि निकन्दर की विह्वल तथा वैविध्य में लोक  
साम्राज्य के अभ्युदय के बाद भारत में विकसित हुए बहुत तथा वैज्ञानिक और  
वार्त्तिक संकल्पनाओं की व्यक्तता का क्षेत्र एककाय चीकों की है। प्राचीन काल  
के ज्ञान की उत्पत्ति किसी एक देश की नहीं रही, विज्ञान हमेशा से ही बहुवीररक  
था। वेरे पास ही यह मानने के कारण है कि लोक सम्पत्ती के हमारे पास अनेक  
अंधविश्वास आते, तथा बहुत तथा पात्र, न कि वैज्ञानिक संकल्पनाएँ। यूनानियों  
ने भारत में सभ्यतासम्पत्ती की परम्परा को तथा सदा-सदा के लिए अंधविश्वास  
के पूर्ण कलित अवोतिव तथा बहुत-अवतकून जैसे किछ छोड़ दरे। वे ही सभ्य-  
निष्ठिर की अभास्यीय (वीक भी हो सकता है) मानता हैं जो भारतीय परिवेश  
में इस गया था। उन्होंने वैज्ञानिकता तथा बहुसंक्षिप्त जैसे जन्म लिये। स्वामी  
विश्वकामन्द ने भी अपने व्याख्यानो में इस बात पर बल दिया है। हमारे देश में  
कलित अवोतिव तथा अंधविश्वास वीक सम्पत्ती के प्राप्त विरासत है।

सायन कोलहुक का यह कहना लोक है कि युग रोमक सिद्धान्त श्रीवेव  
होया वैचार दिया गया, वहीं यह युद्धकालामी का भी है जिन्होंने बहुयुग के  
(साम्राज्यसंक्षिप्तसम्पत्ती) ...

सम्भव है कि वाटसेव का मान 505 से 550 ई० में लिखा हुआ सामान्य मान्य है ।

ब्रह्मगुप्त ने भारतीय गणित तथा खगोलिक ज्ञान को जगत् बढ़ाया तथा यह इसके विषय या कि भारत में खगोलिक चीजों द्वारा प्रभावित हो । यह एक महान् आलोचना था । उसके ग्रंथ 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' के गणितही अद्ययावत का नाम कल्प बरीक्यादयान है जिसमें उसने 'आर्यभट्ट प्रथम, जैन पद्धति तथा विदेशी खगोलविदों के मतों की आलोचना की है । इसे विगत पीछियों में देखा जा सकता है ।

“यूक्ति शीघ्रेण, विष्णुचन्द्र, ब्रह्मन्, आर्यभट्ट, वाट और सिद्ध बह्म और ऐसे ही विषयों पर विरोधी विचार रखते हैं अतः इसके उसकी सज्जानता का पता चलता है । ये आर्यभट्ट की भी आलोचना की है यह इन सारे विषयों पर भी लागू होती है । ये शीघ्रेण तथा अन्यो पर कुछ और आलोचनात्मक टिप्पणियाँ करेगा ।”

‘शीघ्रेण के पूर्व, चन्द्रमा की मासिक गतिशी, चन्द्रमा, चन्द्रमा का भूमि उपर्य और उसका पाल, संवत्, कुछ के सीध और तबि की मास गतिशी के सम्बद्ध विषयों की वाट से लिखा, सज्जिवशी तथा दुव-बह्मशी की बसिष्य और विजयसन्दी के परप्रकरण से लिखा । यही, यही उसने आर्यभट्ट के भूमि उपर्य, बसिष्य और वाट के सम्बन्धित बातें ली जो यही की वास्तविक गति की रखांति है । इस तरह दोषक सिद्धान्त की रली का सम्भार वा शीघ्रेण द्वारा वैश्व काता विचक्रा बना दिख गया है ।”

ब्रह्मगुप्त भारतीयों की एक यह रही खगोलिक के मास्य वा कि के खगली देशी प्रभावशी छोड़कर विदेशी प्रभावशी की और लम्बू हो रहे हैं जो वा को कम यही भी वा दोषपूर्ण की थी ।

इसमें कोई शक्य नहीं कि आर्यभट्ट प्रथम एक वेदांगी व्यक्ति था । उसकी पुस्तक आर्यभटीय चार अध्यायों (नीतिक, पथिक, काव्यिकीय और शीघ्र), 10 + 32 + 25 + 30 = 118 श्लोकों में न केवल खगोलविद्या तथा शीघ्रगणित की नीव रखी बरिदू मुखभूत समस्याओं की सुलझाने ने भारतीय गणित्यक की गणित्यता भी सिद्ध की । ऐसा चलता है कि आर्यभट्ट की भारत में जो गणित्यीय

को मिलती है। अक्सरकभी ये अपने ही इतिहास में इस पुस्तक के अनेक समर्थ दिये हैं (इसमें इसका पूरा उत्तराधिकार आद्यक भी सम्मिलित है)। बहुमुख ने ही अरबी को खलीफाअल सिद्दाया, 'विश्वहिन्द' नामक अरबी कृति बहुविद्यान्त का अनुवाद है तथा अलकौल अलकालाक का अनुवाद है।

भारतीयों ने किसी अन्य खोज क्षेत्र की अपेक्षा खगोलिकी के क्षेत्र में अपनी वैज्ञानिक मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया। वैज्ञानिक मनोवृत्ति सूचक है प्रकृति की घटना की कड़ी संलग्न के लिए व्यवहार करना और अति नव पर प्राचीनकरण की विद्या में प्रवास जिससे अतिरिक्त व्यापकता तथा सुस्पष्टता लाई जा सके। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कल्पना का भी सहारा लिया जाता है। यह विचार अतः और सुस्पष्ट अतः दोनों के सम्बन्ध के लिए कोशिश की कल्पना करता है। यह इस कल्पना से शुरू होता है कि जो निश्चित आधार के लिए कार्य है वह अतिप्रथम तथा अनिश्चित क्षेत्रों के लिए भी सत्य है। बड़ी-बड़ी संकल्पनाएँ प्रकृतिपूर्ण पाई गई हैं जब उन्हें परम सत्य तथा अमर्य सीमाओं में प्रदुक्त किया जाता है। किसी विद्वान् को सभी क्षेत्रों में एक का ही भाव आदि (पैरे के विचारन का भी वही चलता चाहिए)। सम्प्रदाय के आरम्भ में एक अपनी भाषा की असमर्थ मानते थे और इसलिए सभी दुनों में वैज्ञानिकों ने अन्वेषणों की सम्भाव्यता की अलग भाषा (वार्तनिकों और कवियों की भाषा नहीं) में व्यक्त करने का प्रयास किया तथा इस प्रयास में उन्होंने कल्पित की भाषा तो जिसमें अवास्तविक चित्र भी थे। यह अपने माथ में एक महान खोज थी। वाणिनि का अन्वेषण अन्वेष्याली, जगदि कोश की भाषा, विश्व अन्वेषण की भाषा इस विद्या में प्राथमिक प्रयास थे। अति सामान्यीकृत भाषाओं का उपयोग एक प्रयत्नकारी ऐतिहासिक महत्त्व की घटना है। वैदिक साहित्य के घेरा परिचय होने के कारण मुझे लगता है कि अन्वेषण केवला या कल्पित जगते विचारों की सामान्यीकृत करने का प्राथमिक प्रयास है। विभिन्न स्थलों में इसके विभिन्न उपयोग किये गये हैं।

संक्षेपशील तथा संकेतनी के अनुसार न केवल भाषा के सम्प्रदायों की संक्षिप्त तथा सुविचारितक अधिपति बनाया अतिरिक्त परिभाषों तथा समीर अर्थों का बहुत ही बड़ा। साथ ही सांकेतिक भाषा के यह साथ था कि संकल्पनाओं के

भरत तक पहुँचा जाता है। सबसे पहला सक्रिय योग्य है तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण सक्रिय मान्य है।

सबसे पहले के सक्रिय संस्कारों की भी तथा इस संदर्भ में संस्थाओं का स्वामीय मान भी सार्वक। ऐलेन कुलेन्ट्रियेनु सर्वप्रथमस्वायत्तपरिचालन स्वायत्तता (III. 13) योग्य कुछ की टीका करते हुए व्याक ने स्वतन्त्र-परिचालन की स्वायत्तता की ओर इस संदर्भ में उन्होंने बताया कि उद्देश्य (घर्षों) नहीं तथा यह संकटा है लेकिन इसके साक्ष्य (घर्षों) स्तर के बदलने (अवस्था-धेर) के बदल सकते हैं। उन्होंने दो उदाहरण दिये : (1) अंक एक ही हो सकता है लेकिन किसी संस्था में उसका स्थान इसके वास्तविक मान कीकड़ा, बढ़ाई या हटाई की अवधि को बना। सम्यक्स्वायत्ततायामे बातें स्वायत्तता कीकरीकरी रहाने। (2) एक ही स्वी माँ, किसी की पुत्री तथा किसी की बहन हो सकती है। निश्चित रूप के स्वायत्त स्वामीय मानों के योग्यकर्ता नहीं है। यह हमें बहुत पहले के पता था परन्तु इसके पहले का कोई निश्चित अधिकार या अवस्था नहीं मिलता। यदि हम यह मान लें कि वर्तमान द्वारा विज्ञानमात्र की आलोचना कीकरी द्वारा अत्यन्त विज्ञान की आलोचना है तो योग्यकुल के लेखक वर्तमान 300-400 ई० के लेखक रहे होंगे (वि० एच० गुरु)<sup>1</sup>। कुछ अन्य विज्ञानी (महामाध्य और योग्यकुल के) को लेखकों की एक ही मानते हैं तथा वर्तमान की तिथि 200 ई० पू० बताते हैं। तब भारतीयों की संस्थाओं के स्वामीय मान (उनके द्वारा छोले गये) का मान ईश्वर से पहले का माना जाता है। यह भारत में उस दिनों अवधि का अवधि मान के के रूप दिये गये थे जो समझती वास्तुनिधि के अन्वयों के (अवधिगत: 200 या 400 ई०)।

आर्यःऽऽवसथ ने अपने अन्य आर्यवर्षों में नहीं संस्थाओं की संस्था के अवधि करने के लिए संस्थाओं की अन्तीय मान लेकर एक सक्रियिक स्वायत्तता — (क 1, क 2 ... क 4, क 16, क 21, क 25, क 30, क 40, क 50, क 100) और स्वयं की मात्र के रूप में (ए 1, ए 100, ए 100<sup>2</sup>, ए 100<sup>3</sup>, ओ-100<sup>4</sup>) माना है। लेकिन यह विधि केवल ग्लोको के निर्माण में ही उपयोगी थी। उदाहरण के लिए—

$$\text{कि-कि-कु-कु-कु-कु} = (3 \times 100) + (70 \times 100) + (23 \times 10000) +$$



सार्वभट ने एक द्विघात समीकरण का हल निकालकर बीजगणित की नींव रखी। भास्कर द्वितीय ने अज्ञात संख्याओं (अन्वयक) की संकल्पना की जिसे उसने मातृ-कावय, कालक, नीलक, पीठक, लोहितक जैसे शब्दों द्वारा प्रदर्शित किया (इन्हारे  $x, y, z$  की तरह) (भास्कर का बीजगणित, 1150 ई०)। यह खोज वाता कठिन है कि किता सांकेतिक भाषा का उपयोग किसे सार्वभट प्रथम ने द्विघात समीकरण का हल कीं विचार किया।

अभीष्ट वास्तव के अध्ययन से अनेक सुसंगत समझाई उपलब्ध हुई। विद्वान के रोचक ने बताया कि पृथ्वी एक गोला है जो अन्तर्लिख में बिना किसी सहारे के टिकी है। यह एक विचार के विरुद्ध है कि यह किसी ऐसे पद के सहारे टिकी है जो ऊपर पशु के सहारे टिका है। भास्कर (1150 ई०) ने इस विचार को निरस्त कर दिया कि पृथ्वी नीचे की ओर गिर रही है। यदि यह गिरती है तो नीचे से चाली होने से यह उस नीचे से जो संकल्पित के निर्देशों को ऊपर छोड़ा गया है नीचे तक यह नीचे पृथ्वी पर कभी भी नहीं पहुँच पायेगा।

अधोलिख में अनुसृत होने वाले भौतिक विद्वानों में के में एक रोचक कदा-हृत्त पैदा चार्डन। सार्वभट और ब्रह्मगुप्त के समय में ग्रीसीन और भारतीय सम्प्रदाय दोनों पक्क-पूरे रहे वे और कुछ मान्यों में सम्भव सहयोग था। इस युग में अधोलिख विद्वान न जो पूर्वज: भारतीय, न ग्रीक और न ही ग्रीसीनोनियम ही था। उस समय एक ही संकल्पना प्रमुख थी कि पृथ्वी के चारों ओर सभी यह समान रेखीय वेग से घूम रहे हैं। पृथ्वी का व्यास 1600 मीलन, कदमा की दूरी 51,570 मीलन (पृथ्वी की जिनका का 64 5 गुना), अन्य इन्हीं की दूरी पक्कन केरी के आधार पर निकाली गयी (वास्तव में दूरियाँ परिछमन के कक्षीय अवधिनों के अनुसमानुवाती होती हैं लेकिन कुछ और कुछ के लिए अधिलिख पर निर्भर करती हैं)। इन्हीं के केन्द्र का समीकरण अधिलिख द्वारा बनाया जाता है तथा इस अवसरवा में भारतीयों ने एक नई खोज यह जोड़ दी कि अधिलिख की परिधि पर होती है, यह भूमि ऊपर पर अधिलिख तथा भूमि नीचे पर अधिलिख होती है और कम से कम इनसे 90° पर एक समीकरण अपनी परम दिक्धि पर पहुँचता है। कुछ अधोलिखियों द्वारा की गयी सम्प्रदाय अधिलिख की खोज का उपयोग सभी इन्हीं के लिए किया गया जबकि अन्य (जैसे ब्रह्मगुप्त तथा भास्कर

की देखीकी बातें क्यों सम्मिश्रित की गयीं। आर्यभट्ट प्रथम ने हट कर यह कहा—तारी का बोला निवार है और धूम्री चक्रण कर रही है, इस तरह वह तारों तथा ग्रहों के अपने तथा दूसरे के लिए उत्तरदायी है। ब्रह्मगुप्त इन विचार को अस्वीकार करता है और कहता है—यदि धूम्री एक निम्न में एक मात्र धूमती है तो तब और कौन का कार्य वह अन्वयमेयी? यदि यह धूमती है तो अतम्बद्ध वास्तुई क्यों नहीं निर जाती? इस पर टीपकार पुनरुक्त स्थानी कहते हैं, “तो भी आर्यभट्ट के विचार संशोधनसक है क्योंकि ग्रहों को ही यशियाँ एकत्रण नहीं हो सकती और इस आशय का निरसन ही जाता है कि जैसी वास्तुई निरती क्यों नहीं, हर तरह के धूम्री का निश्चय भाव भी उपरी है, इसलिए धूम्री पर कहाँ भी सम्बन्धोक्तकहाँ कहा होना नहीं सबसे ऊपरी सिद्ध होता।”

पश्चिमी विद्वानों का प्रयास भारत की हर उपलब्धि को बेबीलोनिया का घीम से ओढ़ने का रहा है। आपकी बात है कि प्लेटो और अरस्तू जैसे विचारक विस्मय करते थे कि आकाश अद्वितीय पूर्व के पश्चिम चक्रण लगाता है जबकि पौटलॉस की हेराक्लीडिस ने स्पष्टतः यह बताया कि धूम्री अपनी धुरी पर घूमने के साथ-साथ पौलीन घंटों में पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। हेराक्लीडिस ने अपने विचार विस्तृत होकर इसे वास्तु यह कहना करिय है कि उसके विचार सर्वोच्च हो पाये या नहीं क्योंकि ये विचार प्लेटो और अरस्तू जैसे तात्कालीन शास्त्री से बिल नहीं खाते थे। इसके यह विस्वास्त नहीं किया जा सकता कि उसके विचार भारत का पाये होंगे। यह मान लिया गया है कि हेराक्लीडिस के विचार बेबीलोनिया की सेलूकस द्वारा अपना लिये गये। यह केवल अनुमान सरासरी का लक्ष्य है कि धूम्री के दैनिक परिघ्रमण का विचार बेबीलोन से होकर भारत पहुँचा। आर्यभट्ट ने इसी विचारधारा पर अपनी संकल्पनाई की और व्यक्तिगत रूप से मेरा यह सोचना है कि भारतीय समीक्षकों के लिए इस घटना की खोज का क्षेत्र उसे ही दिया जाना चाहिए।

हेराक्लीडिस और अरिस्टार्कस ने कहा—वेदित तारों की व्याख्या इस प्रकार हो सकती है कि धूम्री घूमकरेण के ग्रहों के चारों ओर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, हर दिन कम से कम एक बार तो ही ही होता है।

पकड़ी है तथा इसी अनुपात में समुद्र विनमित होता है।" केल्बुक्न यह भी मानता था कि और अधिक दूर नहीं तो कछुवा घर बाधुरगन्त है।

आर्येष्ट के "पीलापाद" के विज्ञान के इतिहास के सम्बन्धित तथान्तीयक जानकारी मिलती है। पृथ्वी, चन्द्रमा, वही और तारों का साधा हिसका संयकारण कर्ता है, वे एवम् अपनी ही छाया में हैं, दुबारा साधा साध कबकीता है, क्योंकि सूर्य के सामने है (यह तारों के स्थान में खच नहीं है) (5) पृथ्वी जल तथा वायु के साक्षात्करण से चिरी है (6, 7) ब्रह्मा के स्थित में पृथ्वी कट पीला एक पीलाव बड़ जाता है तथा ब्रह्मा की राशि में इतना ही कट जाता है। जिस प्रकार जल पर बैठा एक व्यक्ति नदी के किनारे स्थित पैरों बाहि की विपरीत दिशा में खड़े देखता है उसी प्रकार तारे की लंका के पश्चिम की ओर खड़े दिखाई देते हैं। इसा के प्रकाश के कारण कलशों तथा ग्रह जलम होते तथा पीछे हट कर पश्चिम में दूरते हैं (10) पार ब्रह्म 90° के कोन पर इस प्रकार स्थित है कि जब लंका में सूर्योदय होता तो सिद्धपुर में सूर्यास्त, कबकीता में ब्रह्मास्त्र तो राकसाचुरी में ब्रह्मराशि होती। पृथ्वी के परिभ्रमण का कारण इसा या हुवा की छाया है जिसकी प्रकलता ईसा कि उसने कहा है—पृथ्वी की सतह के 114 कोन की दूरी तक होती है (15 योजन, एक योजन=7.6 मील) और पृथ्वी का व्यास 1050 योजन है (7980 मील)।

आर्य देशों में स्थित, गोलस्थित तथा अवस्थिति के क्षेत्र में काफी उम्भति जो हुई वस्तु वास्तविकी के क्षेत्र में कम हुई क्योंकि भौतिक विद्वानों की परिशीलन कम नहीं दिया जा सका। खगोलविज्ञान में दूरी और समय का महत्व था, इन्द्रजाल का प्रश्न सामने नहीं आया था। समय और दूरी की मात्र के लिए कुछ इकाइयाँ आवश्यक हैं। वैदिक समय में वज्रमान की लंबाई, जो हाथ की ऊपर लैलाने पर जाती थी उसे कुछ या एक इकाई कहते। पुष्ट, चर, हाथ, अंगुलि की चौड़ाई, जो या तिन की लम्बाई के सब अवस्थित थी और सम्भवतः वह पुराने समय में उन्हें आंतराष्ट्रीयमूल नहीं दिया जा सका। इसारे बचने यह के लम्बार्थ में समय की मात्र कुछ निर्दिष्ट है। ब्रह्मपुष्ट के कुछ सुविज्ञानकाल मान लारकी बताई, 6 प्राण=1 वज्र (24 सेकेण्ड), 60 वज्र=1 घटिका (24 दिन), 0 घटिका=1 दिवस या दिन 30 दिन=1 मास, 12 मास=1 वर्ष। इसी तरह के इसारे मास कीभीय मात्र भी है। पक्ष के आठे हिस्से पक्ष (या

अंश, 30 अंश—1 राशि, 12 राशि—एक घण्टा (360° का पूर्णवृत्त)। मैं राश विज्ञान के इतिहास के बारे में बातें नहीं कर रहा हूँ। कुछ तथा सीधे पैदाये पर भी बातों का कभी महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक विज्ञान में आज भी नवी संकल्पनाओं के लिए तथा नये विषयों के लिए नवी इकाइयाँ भी बनी हैं। कई बल्लेघरकताओं के साथ इकाइयों से जुड़कर जमर हो गये। जैसे—बीस्ट, एम्बियर, बीस्ट, बीज, डेरी, क्यूरी, एक्सट्रान इत्यादि भूगोलशास्त्रा वैज्ञानिकों के नाम न होकर इकाइयों के नाम हैं जो मासालयक रूप में उपयोग में लायी जाती हैं। इन्धमान, जम्माई और समर अब भी ऐसी कुलकुल विचारों हैं जिनमें अपनी अनेक इकाइयों को व्यवस्त किया जा सकता है। फिर भी इन इन इकाइयों के सम्बन्ध नहीं हैं और यह हमेशा के अनुभव किया जाता रहा है कि वैज्ञानिक संकल्पना को स्वीकार किये जाने के लिए वह न केवल पुनरात्मक रूप के तुष्ट करने वाली हो बरिहु मासालयक रूप के भी हो।

यह विचित्र बात है कि कुछकाल में हमारे अनेक विचार सामाजिक परि-माणाओं के अभाव से विकसित नहीं हो गये। जल, संवेन, ऊर्जा, शक्ति, लीडरा और बल्लव भी बलितीय इन से विवेचित नहीं किये गये थे। वैज्ञानिक प्रवृत्तियों में 24 गुणों को गिनाया गया है जिनमें दुर्गम, लवला, दिनलला, स्वेदिक लमला (विन लवीलायन और लवला) सम्मिलित हैं। क्रियाओं के बीच प्रकार भी बताये गये हैं—लवर लोका (लालोका), नीचे लोका (नयलोका), दमाना (लुवन), प्रसार (प्रसरण) और बलि (बलन)। ललोका और नयलोका दोनों की एक में (एक को प्रसारक और दूसरे को ललोका) व्यवस्त किया जा सकता है और इसी तरह के प्रसरण और लल्लोका भी एक हो सकते हैं लेकिन सबसे आश्चर्य-जनक बात यह है कि न तो इन गुणों की और न ही क्रियाओं की मासालयक तथा नवीय रूप से व्यवस्त किया गया।

मूटन की वास्तविक ईवीय शक्ति वीसी सगली है जल, संवेन और ऊर्जा की इन्धमान के रूप में व्यवस्त किया जा सकता। इन्धमान और वेन का गुणलक्षण वीन कहलाता है। लाल और इन्धमान का गुणलक्षण वन कहलाता है तथा ऊर्जा, इन्धमान और वेन के वर्ग के गुणलक्षण के बराबर होती है। मूटन का वीनलक्षण वेन यह लक्षण—“पूखी लोद का वेन की लवनी और लालवित

है और  $\pi$  का मान अलग-अलग स्थान पर अलग होता है। बाइन और तर्क की परिभाषा (जब और तर्क की जगह) और इसी प्रकार की अन्य इकाइयों आधुनिक विज्ञान में महत्वपूर्ण हैं।

जब तक मैं दार्शनिक और खरीद विज्ञान की सम्भावना के बारे में बातें करता रहा। विज्ञान में केवल दो मुख्य कठोरियाँ हैं : विज्ञान की प्रेरणा के अनुसार होना चाहिए और इसे किसी समस्या की मातात्मक रूप से हल करना चाहिए। आरम्भ में खामोश विज्ञान की अलग-अलग कल्पनाओं तथा अन्तर्भावित था।

हमारे पास साक्षात्कार, अन्तर्भावित, विचारकवाद, विचारकवाद के। वे बात न ही दार्शनिकों और न ही बात लोगों को संतुष्ट कर सके। चीन लोगों की संस्कृति की भी न ही विशेषतात्मक, न ही संस्कृतिगत मातात्मक रूप से प्रकट किया जा सका। जब इन संस्कृतियों से छुटकारा मिल गया तो खामोश विज्ञान और बहिक संपादन बन गया।

निःसन्देह कथन के परम्परागत की तथा कार्य-कारण सम्बन्ध की नींव रखी लेकिन बौद्ध और साधन की संकल्पनाएँ तथा प्रत्यक्ष कथन संकल्पनाओं का अन्तर काफी महत्वपूर्ण था। इस तरह के सही वैज्ञानिकवाद केवल दार्शनिकों को संतुष्ट कर सकता तथा सही इसके सिद्धांतों की प्रयोगात्मक परीक्षा नहीं हो सकती थी। वैज्ञानिक के छोटे की एक मान्यता है, मान भी वह प्राकृतिक है लेकिन इससे रसायनिक चीजों के विशेषण में गुणात्मक तथा मात्रात्मक रूप से कोई सहायता नहीं मिलती। यह अन्तर्भाव के स्तर पर पर्याप्त रूप से रहता था।

धार्मिक, वैवरसायिकी और चिकित्सा विज्ञान के अनेकित क्षेत्रों में भी पुरानी सैद्धान्तिक दृष्टिकोण अवास्तविक की जगह इसके आधार पर प्रायोगिक और मातात्मक विज्ञान का विकास नहीं हो सकता था। इन क्षेत्रों के रहस्य अब भी अन्वेषित हैं। खरीद प्रकृत होने अस्पष्ट है कि इन चितना ही मानके का प्रभाव करते हैं वे अपने ही सबसे सिद्ध होते हैं। लेकिन चरक और द्विपीछेद के उन्हें किस प्रकार के समझा वह आज भी सच है। विकास की दूर अवस्था में हुई प्रगति की ऐतिहासिक परिचय में मुख्यतः चित्त जाना चाहिए। विज्ञान

किया गया है उसे 500 ई.पू.में नहीं ज्ञात किया जा सकता था । विज्ञान यन्त्रा-  
विकास करता है ।

कोई भी विज्ञान अकेले ही विकास नहीं कर सकता । आज भी कुछ भी  
हमारे पास और विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, पथित या औपथि में  
है वह आधुनिक विकास का कुछ परिणाम है । नई बात हमारे विगत इतिहास के  
लिए कम भी है । पुरानी तकनीक, विज्ञान और दर्शन किसी एक मात्र के बीच-  
मान नहीं है, वे सब सभी क्षेत्रों के प्रवासी के सम्मिश्रित अतिक्रम है (एक पान्द्र,  
या मानव समुदाय के नहीं) ।

समर्पिता तथा मात्रात्मक सुझाव के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की कठिनतम  
दृष्टान्ती के देखा जा सकता है । इस की परिधि तथा इसके व्यापक के अनुपात का  
मान (π का मान 3.1416), करणी के मान जैसे

$$\sqrt{2}=1+\frac{1}{3}+\frac{1}{3.4}-\frac{1}{3.4.34}=1.4142136$$

आधुनिक मान 1.414213 (बीजगण) है,

$$\sqrt{3}=1+\frac{2}{3}+\frac{1}{3.3}-\frac{1}{3.3.39}$$

और माने भी, खोजताहय के अंकितों की दिने पने, बीजगण-सुखीयता और  
शिक्षीनवितीय सारमिनी, खोजताहय में अन्ध, द्वितीय अन्ध अन्धरी (इस प्रकार  
का अन्धकन कर्मन) पर विचार, प्रहनों के बारे में परिष्कारणी करते समय  
समर्पिता ।

सूचकतम कर्मी की दर्शनीयता के समय में स्वाम में इन पाते हैं कि एक  
कर्म में छोटे से क्षेत्र से आने वाले सूर्य प्रकाश में हीनते हुए धूम के कर्मी की  
जगतेनु कहा गया है । कर्मी अर्थों से इनके छोटा कुछ भी नहीं दिखायी दे  
सकता । परमाणु अदृश्य होते हैं (इन्हें विशेष उपान के ही देखा सकते हैं) । हमारे  
परमाण्विकर्मी का सिद्धान्त भी उन्मत्तचित के सूक्ष्मदर्शी के सीधे जड़ते धूम कर्मी  
के दृष्टिगत होने पर ही आधारित है । केवल सोने के बीजने में उन्म कोटि की  
तीव्र समर्पिता, सोने की पत्तरी तथा घाते कर्माने में उन्म कोटि की शिथिलता,

प्रात्यक्षिक तथ्याओं की उच्च कोटि की शुद्धता, उनकी तारीखिक विश्वसनीयता (या अन्य तथ्यों) पर निर्भर करती थी। जपुर्बों के वैज्ञानिक ज्ञान के अभाव में इससे अधिक कुछ हो भी नहीं सकता था। निश्चित रूप से कोयिक का वाङ्मयी रूप भी शुद्धता के विचार को दर्शाता था।

किसी वस्तु में कोयिकी भाषा का वास्तविक अनुमान लभर के हुकड़े (लिफ्ट) पर कोय के छोटी वही लकीर को देखकर लगाया जा सकता था। इस बात पर और देना आवश्यक है कि वास्तविक लिपिरिणी के बिना कोय कीर चीरी का आधार व्यवहारिक नहीं बन सकता था।

## 5. प्राचीन भारत में औजारों और उपकरणों का युग\*

**आधुनिक इतिहासकारों ने अक्सर औजारों का उपयोग करने के कारण मनुष्य अपने जनक पुरुषों के चिन्मत्ता रखता है। औजार का मान्य पावर, खड़ी, लोह, चाकू, ब्लेड या कील भी हो सकता है। जैसे-जैसे सम्पदा का विकास होता गया जैसे-जैसे पॉलिथ सामग्री में आधुनिक वृद्धि हुई, धीरे-धीरे औजारों पॉलिथ सामग्री अधिक परिष्कृत होते गये, वे सभी विधाओं में सम्प्राप्त होते गये और अन्ततः इन तकनीकी और भारी मशीनरी के युग में प्रवेश कर गये। ऐसा कि ये अपने पहले के व्यापकता में कह चुका हूँ कोई विज्ञान अकेले विकसित नहीं कर सकता, उसी तरह के मैं यह कहूँ कि बिना विज्ञान के कोई तकनीक विकसित नहीं हो सकती। भारत बीसवीं सदी में तकनीकी युग में प्रवेश कर रहा है जिसका प्रथम स्रोत है। भारतीय देशों में तकनीकीयुग के तथा उनमें तकनीकी युग भी या वस्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पास तकनीकी थी। यह केवल परिवर्तन में विकसित विज्ञान के दो-तीन ही वर्ष बाद की घटना है कि आधुनिक तकनीकी विकसित हो पायी है और इन कह सकते हैं कि हमारे पास जितना वैज्ञानिक विज्ञान है उसनी तकनीकी भी। इस सदी के आरम्भ तक विज्ञान तकनीकी के साथ या वस्तु यह तकनीकी विज्ञान के साथ है। इसलिए आज तकनीकी के सर्वश्रेष्ठ केन्द्र तथा संस्थान विज्ञान के भी शीर्षक हैं। मैं बीच विज्ञान के बारे में नहीं नहीं कर रहा हूँ। वैज्ञानिक तकनीकी (वैज्ञान प्रौद्योगिकी) कुछ निश्चित संस्तर पर है और कोन मानता है कि ऐसा भी दिन आये जब यह बीच विज्ञान पर मान्य बना ले।**



एक ही भाषासंस्थाओं की प्रवृत्ति है जिससे तकनीकी आविष्कार होते हैं। आर्थिक आविष्कारक एक सामान्य मानव का जिसकी इतिहास में कोई स्थान नहीं दिया गया। नवीं शताब्दी की आर्थिक शक्तों में बहुतों की और वे चरम की इतिहास में समाप्त हैं। छोटे आविष्कारों की आर्थिकता के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान नहीं बढ़े है। उदाहरणार्थ, यह कहना कठिन है कि सर्वप्रथम किसने और वास्तुशिल्प की शीश की। जिसके बाद सामोरे थे वे दक्षिणी अफ्रीका और पूर्वी अफ्रीकी देशों में रहा, वहाँ के स्थानीय संघटनस्थ देशों जिसमें प्रागैतिहासिक वस्तुएँ भी देखी गयी थी। वे प्राचीन भारतीय वस्तुओं से बहुत भिन्न नहीं थी। आर्थिक विकास के समय सभी देशों की परिस्थितियाँ लगभग एक-हीसी थी। जिन संस्कृतियों में आज का विकास था वहाँ के मिट्टी के बर्तन और रसोई के बर्तन लगभग एक-हीसे थे। आज संस्कृति का एक केन्द्रीय आधार बन गयी है। हम देशी की संस्कृतियों की भी आज का उपयोग करती हैं तथा आज का उपयोग नहीं करती, आसानी से ग्रहण सकते हैं।

भारतीय जीवन में आज की शीश बहुत बढना थी। वैदिक काल से आने (बाह्य, आन्तरिक और भीतर के समय) आज की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वैदिक शीशों में अग्निहोत्र का सम्बन्ध निरूपित है। गुरुत्व के साथ के विरुद्ध शीशों में अग्नि शक्ति से आज उत्पन्न करने का अभाव करने द्वारा वे सिद्ध हो। जो भी हो, सभी आज का उत्पन्न इतना आसान नहीं रहा होगा।

अन्य देशों में आज की शीश कुछ ही प्रकार के स्वतन्त्र सामग्री द्वारा हुई होगी परन्तु हमारे पास पर्याप्त ज्ञान है कि यह भारत की शीश है और वे इसे विश्व के अन्य भागों में भी ले गये। इसके एक महत्त्व बढना बुझी है कि कुछ समारोह विभिन्न आज के भागों को ही होते थे। ऐसा निश्चितः भारत में ही होता था। भारतीय (अथर्ववेद के अनुसार) भी अग्निपूजक आने जाते हैं लेकिन वे इसका दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने अग्नि के भागों को ही अपनी संस्कृति या विकास का विकास किया। वैदिक भागों में विराट वज्र के सम्बन्ध में अत्यन्त बहुतों को अथर्व (अथर्व), दीप्ति को ईश्वर के रूप में तथा अथर्व की इन्द्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वैदिक शीश इन्द्र-हीन की तरह ही संकेत हैं (मनु : III 1-3) लेकिन विराट वज्र के अनुसार वे ही अथर्व ने अपने द्वारा उत्पन्न अग्नि को केन्द्रीय ईश्वर, अपने द्वारा अग्निपूजक अथर्व को अथर्व तथा

ज्ञान, जो वा शिव की हृदि कन में प्रयुक्त करके एक छोटा सा नाटक रचा । वासिष्ठुज विद्वामिष्ठ अग्नि वृक्ष के अग्नि है (अ. III. 29) तथा इन वृक्ष के पत्तोंकी द्वारा प्रेरित होकर यह कहा कि अग्निोंने माय प्रपन्न करने के लिए सबसे पहले सर्वत्र गन्ध बनाया (श्लोक 1-6) । तत्पश्चात् ब्राह्मण में (III 6-3-10) इसकी अच्छी जानकारी मिलती है—

“वे सवन, शीत-कनक, वायव्य, इक्ष्म (दंडेल) के बीच दुग्धे वर्तमाने लकड़ी की परिधि, सवरचना पात का अन्तर, तथा दधु के दो विवृतिर्वा तथा बहिर् की साध-साध सीधा । पुनः दो रचना (रस्तिर्वा) कनकवन्ध की घुमाने के लिए विकल्पे, मघने के लिए दो अरणी, अधिमन्धन-कनक और दो कृष्ण दन सर्वो की लीकर (अग्निघ्न) के पास जाते थे और यह जाने चलाता है ।”

अग्निर्वेद्यन सबसे लकड़ी की चैली की तरह होता है तथा जो नीचे की मघने वाली लकड़ी के लिए (अन्तरधि) होता है विकल्पे ऊपरी मघने वाली लकड़ियों की क्षेत्रकार सीध दिया जाता है । प्रथम मोरनायक चैली तुर कनवेय द्वारा बनाई गयी, इसका समर्पण तत्पश्चात् ब्राह्मण में (IX 2-2-15) मिलता है—“और एक बार वासिष्ठुज ने कहा था—तुर कनवेय द्वारा बनाई गयी, तुर कनवेय ने करोटी में देवताओं के लिए दधु चैली बनाई ।”

माय के कुछ संस्कारों ने वास्तविक साधनों की प्रोत्साहन दिया । इनमें से बहुत की पुस्तिकां यजुर्वेद में दी है (XVIII 19-21) । इस अध्याय के 1-44 श्लोकों का अर्थ देखा है, कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है । अग्नि कुत्तों के साथ सामान्य मानव वैदिक श्लोकों से प्रेरित होकर वास्तविक वास्तविक वस्तुओं की खोज करने लगा । यह यजुष्म बहुत ही साधारण रहा होगा तथा इन सामान्य चीजों का अर्थ किसी एक व्यक्ति की नहीं दिया जा सका । कनक जाति के लोगों ने उत्तर और उत्तर के क्षेत्रों में रुचि दिखावाई (अर्चन II. 31-1) । अथर्ववेद के नये अध्याय में छठे मंत्र में 6 छोटे अक्ष है जिसके अर्थ बहुत ही अर्थ अतिरिक्त दोनों के सम्बन्धित है । यदि हम बहुत ही ऐतिहासिक व्यक्ति वाले जिन्होंने इस मन्त्र की अन्तर्दृष्टि प्रदान की थी उन्हें धरम, शीशाने की होकरी, कनका, बसाने वाला निवार, चम्पक, करसून, चिकड़ी,

वाक, काले द्विज के चमड़े कीनी अन्येक वाणिज्यक बुधितवीं का सम्बन्धता की बात सकते हैं (IX, 6, 15-17)। निम्निल कव से अन्योन्य दन वाणिज्यक बुधितवीं के प्रवचनकर्ता भी है (X 9-26)।

वीरिक युग की एक बहुलवूर्ण कीर कुम्हार-वक्र या कुम्हार का वाक की विवक्षा वर्णन कतरन बाह्य (XI, 8-1-1) में एक वक्र के वाक द्वारा है। कुम्हार (कुम्हार) के सम्बन्धता का वर्णन कतुर्वेद में भी है। कुम्हार के वाक के बलाने वाली मिट्टी के वर्तनों में कटोरा (कटोरावी), बने के वर्तन (कटोरा, कटोरा-वाक) की लक्ष्यतोबुध होती है, कनिष्ठ (छोटा) और बुधित (बड़ा) दोनों, मिट्टी का कलन, (बोड़ और कुम्हार), कुम्हार और कुम्भी (बड़ी और छोटी बड़े), कप (कटोरी), पिम्बन (दुध के वर्तन), वत (कटोरे) और क्वावी (कटोरी) धर्म कार्य करने हेतु हविष्वाक और हविष्करीन। इनमें से कुछ वर्तन सक्की के भी हो सकते हैं। बाद में मिट्टी के हो बने और इस तरह से कुम्हार का वाक बहुलवूर्ण वाणिज्यकार है।

कीम लवारीह बड़े हो लल्लाहूर्णक और कलकीव ह्व से कलवाया जाता था। कीम की हविष्वा 'कल' का कलिक्कलन कलवा कहा जाता था। कलवा कल्लुमन में (III-6-1) कलन के निर्माण के लिए कलि (कलवा), कल्लु (कलकी का कल्लु), कल्ले कल्ले कल्ले कल्ले (कल्लुमनी), कल्ले के लिए कल्ले कल्ले की कलवा (कल), कल्ले की कल्लुम (कल्लु), कल्ले (कल्ले की कल, कल्ले) कल्ले कल्ले हेतु, कल्ले कल्ले (कल्ले कल्ले हेतु कल्ले और कल्लु का कल्ले) के उपयोग का विस्तृत विवरण मिलता है।

हविष्करीन लव का उपयोग बड़ी कल्ले में कल्ले कल्ले (i) कल्ले कल्ले (iii) वह कल्ले कल्ले कल्ले कल्ले के लिए ली जाता जाता है (iv) कीम कल्ले के लिए कल्ले (कल्ले का III 5-32) हविष्करीन में कल्ले और कल्ले होती है। एक कल्ले (कल्ले) कल्ले कल्ले है और कल्ले कल्ले ली ली कल्ले (कल्ले कल्ले कल्ले) कल्ले कल्ले है, इसमें कल्ले कल्ले कल्ले कल्ले से कल्ले, कल्ले कल्ले (कल्ले) के कल्ले में भी कल्ले कल्ले है (कल्ले: का. III-3-25) कीम की कल्ले के लिए कल्ले कल्ले के चमड़े (कल्ले की कल्ले कल्ले) का वर्णन भी

सोन की दुहरे या बार बार मोड़े गये कपड़े से आवृत या ढोला जाता है। यह बाप काया कहनाही है (III. 3-2-9)। लीलने का गाने की प्रक्रिया में संनसिर्वा उठाई या झुकाई जाती है (उदभवम् म्दभवम् निमित्ते)। मैं यहाँ सोम क्षेत्रके और खरीदने के सुन्दर निरनुक्त वर्णन का उल्लेख नहीं करूँगा (III.3.3)। सोम खरीदने के बाद गाड़ी पर लादने और उसे सुरक्षित (हन्मर्द्धितम्) से ढक देने हैं। लादने से पहले इसे कपड़े से ढकेलते हैं। इस गाड़ी में त्रिबीजा जुआँ (म-उ-म) बना रहता है, गाड़ीवाण खड़ा होकर गाड़ी चलाता है (दो बीजों या अक्षयम् द्वारा खींची) तथा गाड़ीवाण बीजों को चवाने के लिए हाथ से चलाक की छड़ी जिये रहता है। गाड़ी के पिछले भाग में लकड़ी का पटरा होता है जिसे अणालम्ब कहते हैं (III. 3-4-13) जिसे गाड़ी को रोकने के लिये अनुवीच से लाया जाता है।

सोन की गाड़ी से उतार कर राजसी आसन (आसनी) पर रखा जाता है। वैदिक साहित्य में अनेक प्रकार की आसन्विधों का वर्णन है तथा सोम से सम्बन्धित आसनी अनुसूक्त लकड़ी से बनती है। यह गाड़ी बड़ी हीनी चाहिए क्योंकि इसे ऊपर उठाने में बार अधिक लगते हैं। सामान्य राजा के लिए केवल दो आसनी आवश्यक होते हैं (III. 3-4-26)। यह घुटनों की ऊँचाई तक पहुँच तकती है (आनु-सन्धित XII, 8-3-5)।

अक्षयम् आश्रय का एक सामान्य गुण उल्लिखने के विषय में है, अन्न की बीजे के अक्षे में, ढोवना की ऊन के बदले में, चारल की रई के बदले में खरीदा जाता था। अन्न और घाँव का काम सोनती का था (XII. 7-2-11)।

प्रारम्भ में खींचे या अनुसूक्त बिदे सभी बीजारों के विवरण देने का कोई कष्ट नहीं है। अविष्णु (अनाम), अक्षि (बाबू का उल्लेख, बाद में ललकार), इत्यनु और कत (चढाई), इत्यर्पित (तीर्थ के साथ तरकम), उष (कन्याई), उदराव (आवास करने वाले निद्र), उपनेत्र (उपनेत्रे गाड़ी बनती), उपानह (घुले), उभिमत (पगड़ी), कलम, उष कलम (घाम, कुम्हड़, गड़े), कर्णु (कुष्ठियों के लिए बर्दे), कूर्च (मोड़ा, विशेष विषाई XI. 5-3-4), तम्ब (करक, ऊन, आका) XIV. 2-2-22, तुमवारं यजु-38), तम्बामिने (उपके लिये जो करके पर काम करता है) और उती (XII.2-2-4), सप्त (अन्न

विशाल क्षुब्ध की बुनने वाला है और इस सम्बन्ध में श्लोक (X, 130-1-2) में वैसी बुनाई और बुनाई की नली (समरणि) का वर्णन मिलता है।

हमारे देश में श्रृंगविधि का विकास अग्नि-उपस्थाओं के सम्बन्ध में हुआ। श्रृंगविधि का अर्थ दूर्ध्व की मान तथा धूमि का स्थान निर्धारण है। मान में वाद्विस्तृकता के साथ ही स्वीकृत इकाइयों की मानसमता बढ़ती है। अग्नि-सेवी के लिए उपमान का हाथ ऊपर उठाकर जो ऊँचाई जाती है एक पुनः कहलाती थी। इसके सामान्य व्यक्ति संतुष्ट हो सकता था परन्तु वह सर्वमान्य इकाई नहीं थी। इसी कारण से हाथ की लम्बाई पर आधारित मान (अरणि), पैर और कदम (पदम) केवल मोटे और पर उपयोग हो सकते थे। अरणि—24 अंगुली, अरणि—12 अंग, किरिति—13 अंग, आगम—4 अरणि—96 अंग, मान—पुनः—5 अरणि—120 अंग (आगम—विषम)।

कीटिन्व से बार के बीच प्रमाण की संस्तुति की है लेकिन लम्बाई के बारे में उनमें क्या कहा? सभी दूर्ध्वों के लिए बीज्य (एक बार बीज कर वा दिया हुआ माने से की गई दूरी—4 अंग—3 मीत) है। कुछ समवायों में —2.5 अंगेय बीज, कभी-कभी—3 अंग) है।

अंग- $\sqrt{2}$  दूरा—बीज्य विस्तार—एक वैदिक दिया है। देने या विस्तार के अर्थ में अंग मान का उपयोग यजुर्वेद में (XX, 19) किया गया है। मान में संकीर्ण या सामान्य उत्पन्न करने वाले साधनों तथा व्यवस्थाओं की सूची है। लेकिन इसमें अंग का उपयोग पूरी मानने के लिए नहीं हुआ। यह सम्भवतः बुनने के लिए की गयी आवाज का परिहार है। एक अंग (हिन्दी में बीज) —1000 दण्ड—4000 हाथ— $1/4$  बीज्य, दूसरी के अनुसार—2000 दण्ड—8000 हाथ— $1/2$  बीज्य। यन्त्रुति करने लीली-जाती एवं महत्वपूर्ण दुर्लभ जिसके लम्बाई जाती है, सामान्य सुख है वा यन्त्रु है जिसका अर्थ समी है। वैदिकियों के मानने में यह दलनी महत्वपूर्ण की कि इसे सुख माना कहा जाने लगा और हमारे सुखसाम्य का अंगविधि में महत्वपूर्ण बीजमान है। एक पैर है जिसे यन्त्रुल (Cordia myxa वा Cardia latifolia) कहते हैं जिसकी छाल के पाए में रसिमाँ बनाई जाती है। (इतर वा. XIII.

यज्ञ में मान की इकाई पुनः होने से ज्ञातः तीन पुनः खम्बी रसमी की खाली की और तब यज्ञ पुनः करते थे (तत्त्व-सा. X. 3-3-12) ।

मान में जो ज्ञान सहायक वस्तुएँ थी वे पुनः (पुनः) और साम्य (विन) या पुनः-साम्य थे । साम्य खदिर जगदी की छड़ी है जो छः या आठ इन्च खम्बी होती है तथा इसका उपयोग विनमें दिखाई देपर में किया जाता है और अग्नि-रक्षक में वस्तुएँ होने वाली यज्ञ सहायक वस्तुओं में से है—पुनः, अग्निहोत्र, रक्षक, रक्षक, कमान, साम्य, कमानाग्नि, कमान, सुसमा, इत्यदि, और वन्य । ऐतरेयब्रिंहि में साम्य का उपयोग अग्निवेदी बनाने में, देखाई खींचने के लिये स्थान निर्धारित करने में किया जाता है । संकु (विन या रक्षक) पुनः रक्षकियों की विन वस्तु है । वे छूटे जाने की मान के लिए बनाये जाते हैं । लहने एक छूटी साहक्य तथा धूमि की पैदाइश परी (कदमी) में की जाती है ।

रक्षक या रसमी के वाद्य वेधु या वीर (वीर वा रसमे की छड़ी) का उपयोग होता था । सहायक साधन में वीर (वीर की लाठी) का उपयोग है । वीर खींचकर होता है । ऐसा कहा जाता था कि अग्नि एक बार भगवान से दूर जाकर वीर के रस में प्रवेश कर गयी तथा दोनों तरफ उसने वीरें लगा ली जिससे उसे कोई पा न सके । वह जगती हुई जहाँ-जहाँ गई वहाँ वहाँ वात बन गई । आपसमान्य पुनः पुनः एक वर्ष बनाने के लिए वेधु की संयुक्ति करता है । बीजावन सुनः सूत्र में वेधु और रक्षक का प्रयोग हुआ है । "तब ज्ञान का क्षेत्रफल माना गया । वेधु पर एक पुनः की छड़ी पर दो विन्हु लगा दिये गये । छीकरा विन्हु दोनों के बीचोबीच बनाया गया । जो कुछ रसमी (रक्षक) के किया जाता है वह वही वेधु से किया गया (बीजा-सुनः. III-12-15) ।"

रक्षक की समवार (रक्षक) का प्रयोग यामिनीय क्रियाओं में देखाई खींचने के लिए किया जाता था । वे देखाई खींचने पर खींची जाती थी । यामिनीय यामिनी में अग्नि धूमि पर ही बनाये जाते थे । इन देखाओं पर के मूल दूधने तथा कभी-कभी उपर परानी छिड़कने के लिए अगुई तथा यामिका अगुली का उपयोग है (इतिहास, तत्त्व-सा. II, 1-2-2) , देखाओं पर पानी छिड़कने

संज्ञान में (VI, 3-3-25) जीव केन्द्रीय मूल बात (परम्परम् करीबकी सेवा सम्मिलित) जीवने का चरित्र है जो माय में एक दूसरे से बड़े होते हैं।

अब मैं कुछ वाणिज्य सुविधियों के विषय में कहूँगा जिसका उपयोग सबसे लाभ में होता था। वैदिक सभ्यताओं में मछल का प्रयोग सभी जगहों, जो सभी सभ्यता के लिए भी होता था। मनुष्यों में मछलमत्त सब्जियों का उपयोग उन सभ्यता-वंशों के लिए आता है जो अंतरिक्ष में घूमने शिखी की देखते थे। प्राथमिक सभ्यताओं में भी मछल, शिखी के कोबीज अंतरिक्ष तथा बड़ी शिखी की भाव के लिए शिखी व किसी सुविधा की आवश्यकता बढ़ती थी। विभिन्न सभ्यताओं और शिखी-सभ्यता में व्यवस्था थी। अन्तर्देश (XIX. 7-1-5) 27 सभ्यताओं के बारे में बताता है। यदि बहुत नहीं तो कुछ बहुत की हवाई शिखी की बात है। वे विभिन्न रूप के जानते थे कि सभ्यता में क्या शिखी, दुग्ध (मिष्ट मछल) एकल है, कुछ दुग्ध का में है तथा दुग्ध-दुग्ध तथा शिखी और शिखी कई है। शिखी-सभ्यता में शिखी सभ्यता के हर सभ्यता का नाम दिया गया—अम्ब, दुग्ध, शिखी, शिखी, शिखी, शिखी, शिखी और शिखी। इन सभ्यता शिखी-सभ्यता का शिखी सभ्यता शिखी में हुआ है जो शिखी का शिखी करती है।

वैदिक काल से लेकर ब्रह्म-ज्योतिष के काल तक असीमोक्ष प्रेक्षण दृष्टि पर आधारित है। असीम विद्या काल के ज्ञान पर निर्भर करती है (कला-विद्या-साधनम् यो ज्योतिषम् वेद स वेद एवम्, मनु, ३)। यह असीमोक्ष प्रेक्षण था कि—

“सूर्य और चन्द्रमा अस्तित्व या अस्तित्व के आगम में कलकल रहे हैं।  
सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में अस्तित्व की और आता है। इस दोनों गतिविधि  
की गुरुत्वाकर्षण शक्ति और आगम के गतिविधि में होती है (चक्र, १)।” दिन की  
सम्बन्धी में जो गतिविधि या रात के समय में जो गतिविधि आती है उसका वास्तविक  
निर्धारण प्राप्त करना आवश्यक है। इस सम्बन्धी में निम्नलिखित गतिविधि  
अस्तित्व है :—

<sup>4</sup>उत्तरी दिशा में पूर्व द्वारा प्रति करोड़ समान दिश का समान होना क्या

बहु स्त्रीयक बीजल का तबि की बतनी फावर के प्याले की ओर संकेत करता है जो 12 ½ कल भार के तुल्य जल भारण करता हो। इसमें तबी पर छोटा छेद होता है जिससे पानी प्याले में प्रवेश करता है जब इसे किसी बड़ी कलश में अधिक मात्रा में जल में डेरने दिया जाता है। जब प्याला पानी से भर जाता है तो बाबाओं के हाथ डूब जाता है। ऐसा माना गया है कि 183 प्रश्न, 12 महिला या 6 पुरुषों के बराबर (1) है। इसी प्रकार की सुक्ति सूरे के बलिदान तथा तातदायक होने पर दिन और रात की सम्बाई में कन्धर हाथ करने के लिए प्रयुक्त की जाती थी। यह कन्धर कश्मीर के निरुदधरी स्त्रियों के देव जाता है। अथवा बहोने, बर्ब, पुरुषी, माय (उपमय), कर्ब, दिन, आधुनी, बहोने की बात करता है लेकिन यह ऊपर दी गई जलपट्टी के बर्बन के अति-रिक्त किसी पान्थिक सुक्ति के बारे में बातें नहीं करता है।

सर्वप्रथम प्रथम (बाबौलीय का लेखक, भास्कर प्रथम द्वारा जिसका नाम रूका) के पास तक अनेक पान्थिक सुक्तियाँ खोजिनी में प्रयोग की जाती थी। ऐसा लगता है सर्वप्रथम ये ही सूरे पट्टी कील (संक्रुधर) का उपयोग किया। जिसकी के अनुसार सूरे पट्टी कील की खोज ऐलेन-बीलेन्ड ने की जिसने स्पाटी में एक सूरे पट्टी प्रसिद्ध की जिसका नाम तिमोदेरिजन था। मिनेटस्पाटी ऐलेन-बीलेन्ड 5-11' लंबी 1-1/2" के माप में लीकित था। यह सुक्त ने साइकलुट विद्यालय में एक दुरा अग्रज (कार्डर) खोजिनी में उपयोग होने वाले पत्थों के बारे में दिया है जिसे सम्झायाव कहते हैं। अब मैं उपयोग वाले पानी कुछ सुक्तियों के बारे में बताऊँगा (1) पनुधुन (2) पूर्वोक्तक कन्ध (3) कल पाय (4) पवित्र मय (5) संक्रु मय या सूरे पट्टी कील (6) पटिका कन्ध (7) कपाय वंज (8) कटोरी वंज (9) पीठ वंज (10) कलिल वंज (11) बहूय या माय वंज (12) अथमय सूक्त (13) कर्ब या छपा कर्ब (14) छपा या संक्रु छपा या सूरे पट्टी (15) दिनाई वंज (16) कर्ब वंज (17) कल या पमोत वंज (जिसे 'संक्रुधरुत एण्ड हिन कन्ध' (1963) नामक पुस्तक में इसका विस्तृत विवरण दिया है।)

यह आश्चर्य की बात है कि जन्म विविधता तथा तातदायक सुक्तियों में भारतीयों ने कल्प किसी क्षेत्र की अनेक अधिक समझता दिखाई है। मध्य



समय किया बाँके बाँकों की संख्या 101 है वस्तु इस सूची की पूरा करने में अनुभव का हाथ भी बख़्त खाता गया है। कोई भी बाहरी पर्याप्त को मानव शरीर में नहीं कर दई उत्पन्न करता है जो सततक्रिया के रूप में शरीर से बाहर निकालने के साधन होते हैं। इन्हें छः समुहों में वर्गीकृत किया गया है—स्वस्थिक, रक्त, ताल, माँगी मज्जा, सलाखा और उपमज्जा। वैदिक संकल्पना यह है कि मानव शरीर में 360 हृदिकर्मी हैं। लेकिन आज हमें द्वारा केवल 102 का ही पता चला है।

स्वस्थिक में अनेक प्रकार की चित्तियाँ हैं तथा इनके 24 उपवर्ग हैं। रक्त की प्रकार के चित्ते हैं, री प्रकार के तालवर्ग, 20 प्रकार के माँगी मज्जा, 28 प्रकार की सलाखाएँ, 25 प्रकार के उपमज्जा हैं। इस तरह 101 की सूची पूर्ण होती है। ये सब वर्ग छोड़े के बचे होते हैं (जहाँ गौड़ा नहीं था वहाँ अन्य छातु का विषयानुसारीय में ला सकते हैं लेकिन पाषाणी के साथ)। इन वर्गों के कुछ चित्तियों का जैनजी साधनरी की तरह के होते हैं (VII, 5)। जीवजीव चित्तियों के चुनाव के विषय में अवलोक के ए० श्लोक में मानवरी द्वारा जीवजीव चित्तियों की पहचान का उल्लेख करता है जो वहाँ अन्य किया में वर्गों द्वारा मानवरी के वर्णन का उल्लेख पाते हैं। जीवजीवों तथा माँगी मानव में भी भारतीयों ने पशुओं का ही अनुसमन किया प्रतीत होता है। जीवन की प्राकृतिक विधियों पर निर्भरता इन कारणों में भारत की जीविकता को कहाने वाला है। यह बताया है कि वे रजत करने ही देव में बनाने वाले तथा जो उत्तार लिये बने इन्हें सुधार द्वारा अभिवादा गया। प्राकृतिक सुविधियों को श्रमियों ने अनुसमनों के विद् निकाला था। अधिक सुधार करके वहाँ की सततक्रिया में प्रयुक्त किया।

स्वस्थिक 18 अनुस के बनाने वाले हैं तथा उनके कुछ वेर, बीडा, बेकिना, बिल्ली, चिमार, हिरन, कीले, समुद्री पक्षी, कूकर, कस (एक प्रकार की गौँडा), मिड, बाक, उल्लु, बील, भूँषण (पक्षी), अँकलीकली, बदबँजन, गन्दीमुखी और इसी प्रकार के पशु-पक्षी बँके होते हैं। वे पशु स्पष्टतः भारतीय हैं बतः वर्गों की बाहर से नहीं लाया गया था।

धुनः ऐसा कहा गया है कि स्वस्थिक की दोषों पत्तियों को समुद्र की राज

निम्नीय इसी क्षेत्र में हुआ है । कृषिगत का उपयोग कृषिजनों के बीच प्रति कार्य या बाहुन पक्षों को निकालने के लिए किया जाता था ।

सुदूर या चिमटे बिना बीज या बीज की सहायता के नहीं रहते वे तथा इसकी लम्बाई 16 अंशुल होती थी तथा इनका उपयोग तथा, बीज, चिमटे या कृषिजनों में के बीज या बाहुन पक्षों निकालने के लिए होता था ।

ताम मन्त्र (12 अंशुल लम्बी) एक-बी या सुमयत होती है । एकल ताम मन्त्रों के आकार बीजा होता है जबकि पुष्प ताम मेंदुली आति की मन्त्रों के कुछ बीजा लम्बा है । ताम का प्रयोग नाक, नाग आदि के अन्दर से बीज निकालने के लिए किया जाता है ।

नाली मन्त्र निर्दिष्ट, एहीमा आदि की तरह का एक मन्त्राकार बीजल मन्त्र है । कुछ के बीजों किन्तु कुछ होते हैं तथा कुछ में एक बिना का मन्त्र रहता है । बीजल मन्त्र अनेक आकार के होते हैं और चमकदार, लम्बी, मन्त्र बीज, पुष्प के सम्बन्धित बीजों में प्रयुक्त होते हैं । इनमें से कुछ मन्त्राकार नहीं, अंतर्ही, मोनि, पन्नाम में कुछ भी प्रयोग करने के लिए तथा बीजल मन्त्राकार में उपयोग होते हैं या उनके साथ किन्हीं मन्त्राकार के साथ उपयोग किया जाता है ।

कलाका मन्त्र आत्मसमतादुसार अनेक आकार और आकृति के होते हैं । चार कलाका, दो पुष्पों में बीज आति किन्ती अंग में बीज का पता लकने के लिए (एचम), या चुकने (अधुने), काटने तथा उध अंग के कल्पन विकासने, तथा एक बिज को दूध पाय के दूसरे पाय को से जाने (चलकम्) या प्रभावित हिस्से से उसे अलग करने (बाहरम) के लिए उपयोग में लाया जाता है । बीज अकार की ललाकार, घाटीय स्वाधी की लवाने के लिए प्रयुक्त होती है, वे कल्पन के आकार की अलग की तरह कुछ कुछ जाती होती हैं । दानने के लिए कुछ अकार की ललाकार होती हैं । एक प्रकार नाक की बीज अलग करने के लिए प्रयुक्त होती । उपयोगों में रसिरी, रसिका, रसम के पाये, जाल, पैरों की लवा, अष्टिम, अष्टाकार संकट, हवीडा, बीज, मोने के अलावा, हार, पैर, अंशुली अलग लक्ष्यता हेतु पाये, पुष्पक सम्मिलित है ।

रक्षणन और बीजल के क्षेत्र में प्रयुक्त वास्तविक पुष्पों, पाककों से प्रयुक्त होते पाये मन्त्रों बीज ही होती थी । बीजाकार बाहुनम मन्त्र से

कुछों का रूप तारन किया गया तथा रसोद्वार के पास अग्नि-वज्र के पास हैं।  
 नदी रसोद्वारों में नदी साकार के करजुल, कदाही, अस्मिन् वज्र होते हैं।  
 सब भी नदी वैधाने पर होते थे। अरक संहिता में उन नदियों की सूची है जो  
 माधुर्यरत्नामयों या श्रीधरि ज्योतिषालयों में अवलुत होते हैं। पारा (अथ  
 चातु भी, वज्रक, अथक, अनेक प्रकार के रत्नों और उपर्यों के अतिरिक्त,  
 जन्मा की विद्विषत करने की तकनीक, आनन्द और आनन्दकरण द्वारा तीव्र  
 बनाने की तकनीक का भी विकास हुआ।

छातु विज्ञान का विकास धीरे-धीरे हुआ तथा इसने श्रीकनो तथा अद्वितीयों  
 का और प्रवचन, इतिहासों पर पानी नदिया, सुझावण, असाई नदियाँ का  
 विकास किया।

\*\*\*\*\*

## 6. भारत में प्राचीन रासायनिक साधन<sup>1</sup>

मैं वैज्ञानिक अनुसंधान समिति भारत अकेल के अध्यक्ष का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे समिति का वार्षिक व्याख्यान देने का विषय पर देने के लिए कहा है जिससे मैं बहुत सनेक वर्षों के लिए गूढ़ हूँ। यह है हमारे प्राचीन देश में अपने ही लोगों से रासायनिक का विकास। यह सम्मोच की बात है कि इस क्षेत्र में देने की श्रम किया जैसे इसी राज्य की अन्य संस्था हिन्दी समिति ने "प्राचीन भारत में रासायनिक का विकास" पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है और मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी के इस प्रकाशन ने अध्यक्ष का भाव आकृष्ट किया है। साथ साथ पहले से ही प्राचीन उद्युक्त चन्द्र राय द्वारा लिखे गये कार्य की आशंका है जिन्होंने उक्त समय से की सामग्री एकत्र हो सभी उसने आधार इस प्रकार के साधन की नींव रखी। उनकी पुस्तक "हिन्दू केमिस्ट्री" (दो खण्ड 1902, 1903) की प्रकाशित हुए 50 वर्ष बीत चुके हैं। कुछ वर्षों पूर्व (1956 में) हमारे राज मित्र तथा डॉ॰ राय के मित्र श्री॰ विजयदरशन राय ने हिन्दू केमिस्ट्री के दोहरी खण्डों को संशुद्ध करके तथा उनका सम्पादन करके "इन्डियन केमिकल सोसायटी" ने प्रकाशित किया है। वास्तव में उन्होंने उस बहुत विज्ञान की पुस्तक की वर्तमान रूप देने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में हुए हर्बर्ट राय विज्ञान के उनकी पुस्तक The Positive Sciences of Ancient Hindus 1915 के लिए श्रेणी है जिसमें उन्होंने अन्य विषयों के साथ संश्लेषित तथा अन्य भारतीय दर्शनों द्वारा विकसित परमाणुवाद के बारे में की उपलब्ध किया है। हाल ही के वर्षों में यह विषय विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है तथा हमारे ही एक साथी महामहोपाध्याय डॉ॰ जनेश मिश्र (एलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने अपने परिचय की एक प्रकाश "Concepts

<sup>1</sup> केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में 14 अप्रैल 1962 को वैज्ञानिक अनुसंधान समिति उ० प्र० के विशेष अधिवेशन में दिया गया वार्षिक व्याख्यान।

pled of Master" के रूप में प्रकाशित किया है (1936)। हमारे एक कम मित्र सुप्रसिद्ध प्रमुख विद्वानों परचुराम कृष्ण गोह, अमरकपुर ईस्टीमेटेड द्वारा, ने अपने अनेक राष्ट्रीय विद्वानों द्वारा विद्वानों का प्रभाव विभिन्न विषयों की ओर आकृष्ट किया है तथा सुप्रसिद्ध और अन्य विषयक सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट किया है तथा सुप्रसिद्ध और अन्य विषयक सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट किया है तथा सुप्रसिद्ध और अन्य विषयक सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट किया है।

श्री गंगम जी शर्माजी द्वारा कोटिल्य के सर्वसाधक की शक्ति (1905) तथा प्रकाशन (1909) इस शताब्दी की एक उत्कृष्टतम कृति है। इस प्रकाशन ने ही काम करने वालों को करने के लिए बहुत कुछ प्रेरित किया है। कई वर्षों पहले वेने कोटिल्य का ग्रन्थ पढ़ा तो मुझे इसकी पूर्णता देखकर आश्चर्य हुआ और वेने 1945 में हिन्दी में एक लेख 'कोटिल्यकापीन रसायन' या 'कोटिल्य के सर्वसाधक में रसायन' लिखा जो आचुराम सेमी अमिलम्बन ग्रन्थ में उपाध्याय इसी विषय पर आकाशवाणी विश्वविद्यालय की 'रसायन सभिति' की भी सम्बोधित किया। कुछ वर्षों पूर्व जब वेने विहार राष्ट्रभाषा परिषद् के सभासदों में बैठना में आकाशवाणी विने (ने आकाशवाणी पुस्तकालय के हैं, 1954) तो एक पूर्ण आकाशवाणी कोटिल्य के ग्रन्थ के सामान्य विज्ञान पर था।

हम अपने शताब्दी वर्षों की प्रकाशित करने में आकाशवाणी रहे हैं। हम घर की-की-राज के प्रति कृतज्ञ हैं कि उन्होंने 'रसायन' ग्रन्थ (1910) की सम्पादित किया है तथा 'रायल एन्सिक्लोपिडिया ऑफ इंडिया' द्वारा प्रकाशन की व्यवस्था की। श्री वेद साधवती विभिन्नतम शताब्दी ने हम के 50 वर्ष पूर्व आचुराम पर अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थों के प्रकाशन की व्यवस्था की जिनमें कोटिल्य अमरकपुर कृत रस सुप्रसिद्ध (1911), कोटिल्यकापी कृत रस कृत (1912), कोटिल्य कृत रस प्रकाश सुप्रसिद्ध (1911) आदि मुख्य हैं। कुछ तथा अनुचित अनेक रचनाएँ आचुराम की प्रकाशनों की शक्ति के कारण अब उपलब्ध हैं। वे उनके साहित्य के सम्पूर्ण प्रकाशन की ओर संकेत कर रहा है जिनमें अरुण, सुप्रसिद्ध, अमरकपुर, अमरकपुर, सुप्रसिद्ध, अमरकपुर और अन्य हैं। सभी शताब्दी का एक सम्पूर्ण विषय कृत 'विश्वविद्यालय' अब प्रकाशित (1950) हो चुका है। बहुत से दूराने छोटे प्रकाशन कुछ पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं तथा अब वे नहीं उपलब्ध हैं। यह निश्चित है कि हमने उन आचुराम के ग्रन्थों का प्रकाशन नहीं किया जो आचुराम की शक्ति के अन्तर्गत हैं।

है। रसायन तथा जीवविज्ञान में भी उसका योगदान कम नहीं है। इस देश के कुछ साहित्य में जलित कीमिमावरी (रसकारण) की ओर ध्यानपूर्ण इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट करने का क्षेत्र पर भी-भी- राय की है। वैदिक और ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन से मुझे प्राप्त हुआ कि विश्व तरह से नष्ट के पूर्व-पूर्वियों वाली ने राष्ट्रीय शास्त्र तथा सामिति विकसित की उन्नी तरह से उन्होंने करीर रहना तथा रोषों के उपचार के अलावा आर्थिक स्थान और कड़ी-कड़ियों के विज्ञान का विकास किया। वह सारी क्रियाओं का केन्द्र बन गया। यह मानव शास्त्र के विकास के इतिहास का एक महान युग था। व्याकरण, छन्द शास्त्र, वैदिक संगीत ये सभी घट करके वे अधिकतम मान प्राप्त करते हेतु विकसित किए गये थे।

बहुर्वेद में हिरण्य, रजस, स्वाम, सोहा, सीन तथा बहु प्रातुर्जी का समेक निमलता है जो सोम, तारा, मोहा, मोहा तथा दिन के निम्न प्रवृत्त हैं। अमर, स्वाम, मोहा तथा चित्त न पुनो में प्रथम-प्रथम अर्थ रखते थे। सामुर्वेदिक काल में मोहा सभी प्रातुर्जी के निम्न सामान्य अर्थ था। अमर इतने का विकटवर्ती है। जयन काया में प्रथम अर्थ मोहा होता है। प्रत्येक तथा अमरवेद में मोहा इस अर्थ में नहीं प्रवृत्त है बल्कि सामान्य रूप से अमर का उपयोग हुआ है। मोहा का अमर का उपयोग तीर और समीप जाने में किया जाता था। मोहा के बलाने की बड़ी की अस्मान कहती है। सीन सामान्य के विचलता था तथा प्रथम प्रथम तनु पर आकर करने में प्रवृत्त होता था। इस अमर में अमरवेद के अधिक प्रथम अमरों का समेक किया जा सकता है।

परम्पराओं के अनुसार अथर्वन पठना सम्पन्न या जिसने वांछित अर्थक द्वारा अग्नि की शोच की। अथर्व निमित्त अग्नि सामूहिक कार्यकलापों का केन्द्र बन गयी। ब्राह्मण साहित्य में यजुर्गो के टुकड़ों के अग्नि दान्त करने के अनेक विवरण मिलते हैं। यज्ञ की पट्ट अग्नि बाद में रजोद्वार में तथा औषधि निर्माण के लिए रसायनशास्त्रों में अनेक कर गयी। चर्चित में अनेक प्रकार की चर्द्धिवाँ बनने लगीं जिसका उपयोग न केवल यज्ञों में अग्नि साधकनिक उपयोग की बलतुई बनाने के लिए होने लगा। यज्ञ प्रारम्भिक अथर्वशास्त्रों के भी अलावा लकड़ी, तिलक, छोटे लोह की वस्तु, प्याले, करसुन, लकड़ी के लकड़, छोटे लोह लकड़ी, विषय बनाने वाले कटोरे, लोह अन्य वस्तुओं से लोच के जो यजुर्वेद लोह संस्मरीय चर्द्धि में बटाई गयी है। बाद में इनमें लकड़,

प्रोवाले की टीकरी, चमड़ा, पत्थर के टुकड़े इत्यादि चिपटे वृत्तिलिप्त हो गये । जिस प्रकार से हमारी प्रतीतजातियों में अनेक प्रकार की लक्ष्मियाँ, बीकर होते हैं वसी प्रकार आर्चीव भाग में भी हमारे पास अनेक प्रकार के ध्याने (पद) होते थे, जिनकी समझी सुनी ऐतिहासिक संज्ञिता से ही रही है (अनुबोध XVIII. 19 में भी) ।

आपकी यह बताना अत्यन्तव्यक्त है कि किन्तु या एखादय उद्योग हमारी संरक्षित की ही तरह सुरक्षा है । इस देश की समता में कोई भी ऐसा काम नहीं रहा जब समझन, छाछ, वही और दुष्ट का मरपुर अवधीय न हुआ हो । दीर्घकालीन तथा सुनिश्चित प्रयोग के पतनकर ही सामान्य दुष्ट के अच्छी रही मिल पारी होनी । दुष्ट के मरुवन प्राप्त करने हेतु मरानी का उपयोग सुनिश्चितक बनना रही होनी । दुष्ट मरुवन के ही बनाना इस देश की आज भी एक विशेषता है ।

किन्तु उद्योग का दूसरा पक्ष सुरक्षा या ऐम्बोइलीय वेव संवार बनना था । इस वेव के हानिकारक प्रभाव की बाद में बात हो पाये लेकिन यह निश्चयन जब इसकी सीमा हुई तो देने-दिने सीमा इसका आनंद गलत करने से और इन में अनुभव की गया सीमा और नव सीमा मिलता । उद्योगका देने वाली ऐसे ही काम पड़ीकुटी सीमा की जो जब निरुद्धि के कारण पर है । मेरा यह स्पष्टिगत विचार है कि लक्ष्मि किन्तु की प्रक्रिया वैदिक युग में लोगों को आज भी परंतु आचरण का पता बाद में चला । सीमा बनाने के लिए बाद के कय में कई (कुम्भ) का उपयोग होता था जिसमें की वा की छेद होते थे, ये किन्तु से भरके होते थे जिसके नीचे आप जगती रहती थी । सीमाका को हलका करके बर्तन में एकत्र किया जाता था । कुछ जातियों के अनुसार परिष्कृत काम का अर्थ आचरण होता है लेकिन मेरा विचार है कि वैदिक युग में इस काम का प्रयोग किन्तु प्रक्रिया के बाद काम को छानने और निरीक्षण तक सीमित था । आचरण एक दाह-वर्ण का जिसमें ही पड़े होते थे किन्तु द्वारा सीमाका निरीक्षा जाता था । इसके बाद सीमा कल दाह-चमड़ा (अधिकृत परिष्कृत) रहता था । इसका विचारन अनुभव बाह्य रूप में मिलता है । इसी में अनेक प्रकार के दाह वर्णों । जैसे जगधु चमक तथा दाहका का वर्णन है । इसमें एक प्रकार की कड़ाही दाह का भी वर्णन है जिसमें आप रखी जाती थी । यह सिद्धी की गनी होती थी जिसमें पलायन की छाछ (वर्णकाम) का कई और कठोरता जाने के लिए चिकनी सिद्धी में बकरी का दाह पित्राया जाता था । तमका बनाने के लिए कड़ीय या बाल, लकड़ या लकड़ी का मोटा धूल, अक्षर या गोड़े की रंग मिलाने





सहस्रव द्रुम कृति और दुष्ट व्यवहार के लिए अस्मिन्त था । मनुर्वेद में पुरीष (आम के लिए) जैसे अन्य मिलते हैं और पुरीष इसी और समुद्रवासी होने का पर्याय था । दूसरा अर्थ करीष था । करीष का दूध अर्ध विधेय हुआ है अतः 'कृषा' है । इसका दूसरा अर्थ 'आर' एक पदार्थ है जो केसिद्वी के लिए महत्वपूर्ण है । अर्चन ने आम की खोज की जिसका सम्बन्ध पुरीष से था, अर्थात् वाय के बीज के कष्ट या उपले दीर्घकाल से जलने के कारण आदि थे । मनुः के अधिकृत कर्तों में आम का पुरीष से बहुत सम्बन्ध था । यह एक रोचक बात है कि आधुनिक के आर के कालों में बीज के उपले (पुके) जंगलों से एकत्र करके उपयोग निर्वहित करने में उनका उपयोग किया जाता था । करीष नाम के कालों में लड़ी है परन्तु सहस्रव में यह पुरीष का पर्यायवाची है और कृति याही बेटी से निकट सम्बन्धित है ।

वैदिक द्रुम में लड़ी-कृदियों और वनस्पतियों का औपवीय बहुत समय से आ चुका था । अग्नेय की दक्षी पुरतक में लीकति सूक्त है । इसमें सह-सप्त लड़ी-कृदियों का वर्णन है जिसका अर्थ या तो सी या साय या साय सी है ।

वैदिक द्रुम में पीछों के जो नाम रखे गये थे वे बाद में बदल गये । वे वैदिक द्रुम की 78 वनस्पतियों की सूची बना पाया है, इसमें से जलेश्वरीय हैं—*Odina pinnata* (जलश्वरी), *Achyranthes aspera* (अपाधारी), *Lagerflora vulgaris* (जलश्वरी), *Ficus glomerata* (तुलसी), *Cassia speciosa* (कृष्ण), *Acacia catechu* (कटिर), *Bocassus flabelliformis* (तुलसी), *Pippali* (पिप्पली), *Hemicleite coccifolia* (कुल्लिनी), *Aegle marmelos* (जम्बू), *Cassia longa* (रजनी) और *Tarminalla bellaria* (विभीषक) । जिसका बाद में इसमें जुड़ा । इन लीनों में से केवल विभीषक के बारे में जानकारी थी ।

सहस्रव और चरक-संहिता के बीच के काल में द्रुम विकास का वर्णन में नहीं कर रहा है । अपाधारी और पिप्पली के ऊपर मनुर्वेद में अनेक सूक्त हैं, तथा चरक-संहिता के दूसरे अध्याय में सुषुम्नान में ही इनका वर्णन है । यह अन्य 200 औपवीय पीछों के बारे में बताया है । इस आरम्भ, ऐक्य, वृक्षशु, अग्निर्वीय और अन्य के कृतज्ञ हैं जिन्होंने रसायन जलादी, उनके द्रुम और शिवादी के सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन किया है । उद्य संयम जो भी समुदाय

यही उसे भोग्यवीर्य सुखी में सम्मिलित कर लिया गया । योगकर्ताओं की केवल एक धृति थी—“सभी प्राणियों का कल्याण” । उन्हें ‘सर्वसुखहृत्विषयः’ कहते हैं । उन्होंने पीछे के हर संघ-जड़, ज्ञान, मज्जा, आश, तन्मा, रस, स्फुटन, आर, बुद्धि, चेत, कृत्, राज, वेद, कर्हि, वलियों, कन्द का प्रयोग किया । इसी काल के पाँच प्रकार के मयकों—वीर्यवर्त, वीर्यव, विह, वीर्यविह, वानुह—का परिचय हुआ । बाद में साधारण मयक, मोरमय और अमोघिमय मयक की आवश्यकता हुई ।

चरक संहिता में साक्षात्कृत किया किन्तु साधनों द्वारा होनी बताई यही (1) मय की क्रिया विशेषकर पीनक के रूप में (2) क्रिया का उपयोग (3) ध्यान और सुद्धीकरण, (4) मयका और साधनीकरण (5) मयान प्रमाण एवं मयधारण (6) मयका का प्रमाण (7) सुगन्धीकरण की क्रिया (8) सर्वांगान की क्रिया । उपकरणों में उसमें पहली बार पीनके के लिए तरावु या तुला तथा मायक वर्तन के बारे में बताया गया । यह कहना कठिन है कि मयका बार किन्तु सार्वजनिक रूप से साक्षात्कृत मान की विधि समावेष्टित की । पीनकी रूप में रस, कन्द, ज्ञान या संकुल की माय कठिन नहीं थी । इस प्रकार के सम्पर्क कहीं से विनाश-अवस्था और वशांतुल्य है जो ऐश्वर्य माय के पीनक है । लेकिन चरक ने कल्पस्थान में पीनके और आशतन मानने की और संकेत किया है । पूर्व की किरणों में मयको वृद्ध के मय प्राथमिक सुविधाजनक इवाई हो सकते हैं । उपर्युक्त का पीन, मायका के बारे, मय, साधनी, पी के बारे, विह के दर्शन के भी माय की वृद्ध हो गये सर्वत्र, संकुल, साधनी, मय, विह आदि कहा गया । कुम्भ, योग और पूर्व साधनी की माय के लिए वे । चरक संहिता में बताया गए इन मायों में से दो मायकों—कल्पिमान और मयमान की उत्पत्ति हुई । यह विचार सात है कि-पञ्चमय में मयमायों की लम्बी सूची है—पीनका, कर्मा, मयिमा, वृत्तकार, अनुकार, अनुकार और व्याकार, रज्जुकार, विहकार, मुराकार, माका-मयुकी, रज्जुकी और हिरण्यकार । परन्तु तुला के बारे में कुछ भी नहीं किया है । तुला की पीन विविधता रूप से वैदिक काल के अन्त में हुई । अनुकार (एक विहई, माया, एक पीनई) का विचार ह्यलंकि मयों के रूप में मयानी का किन्तु माय में यह मायक वर्तन की उत्पत्ति का कारण बना । पुरातात्विक प्रमाण प्राचीन काल से ही पीनके की क्रियाओं की विद्यमानता बताते हैं । हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों की खुदाई में भी पाँच पाये गये हैं

(नवसे छोटा बॉट—0.96 ग्राम और सबसे भारी बॉट 29,680 ग्राम, लगभग 6.5 बोन्स का है) ।

हीटिंग के अवसामय से अनेक विषयों पर विस्तृत जानकारी मिलती है जिससे हम आत्मनिर्भर रह जाते हैं । उसमें पहली बार आर्सेन तथा सिलीकोन, धातु और आलुमिनियम, निकल या विशेष प्रकार पर सोने की परीक्षा, लवणकर्म का सोने की गलत का बॉटो का तबिये पर निष्कासन, छः प्रकार की कार्बो-बेइस, प्रसावना, आसवन, कार्बो, बीरेज, और मधु बनाने, मुरा किण्व बनाने (ऐल्कोहल निर्माण हेतु किण्वक या एन्जाइम बनाने के बारे में विस्तृत विवरण तथा भीजन में विष की पहचान, एवं मृत्यु के बाद कवचरीक्षा से सम्बन्धित विश्लेषणात्मक जानकारी मिलती है । रासायनिक क्रियाओं में लौह एलने बालों के लिए एक और कार्बिक कण से उपरोधी मनु अम्लितुल्य (हृदिबर्मी की मृदा), कवलीस मुरा (बीजा+मिट्टी से बनी मृदा) और मृत्त मुरा (मृत्ती मिट्टी से बनी मृदा) के बारे में भी जानकारी मिलती है । आलुमिनियम के लिए कवचन या कवरे का भी उल्लेख मिलता है । बॉटो के सुशुद्धरण हेतु लोहे के बिलोने जाने का भी उल्लेख है । मृदे पर भी संदेह है कि इस पुन में ऐल्कोहल के आसवन का ज्ञान था या नहीं ।

इस पुन के बाद मिःसंदेह मानार्द्धन का नाम सर्वोपरि है । उन्होंने अपने ग्रन्थ में कोशिल, बरुमान, ककाली तथा कलाकर मधु बनाने तथा आसवन के अनेक बॉटो, बोवार्ड, मुरा-पावन, बरु-पावन, मुरा (हृदिबल) और लोहने की कलीन का उल्लेख किया है । विलु कोशिल ने अपने एल्लुवन तंत्र (11वीं सदी ई० ) में अनेक प्रकार की मृदाओं—ककास मृदा, मृक-मृदा, बलमृदा तथा बीरे मृदा के बारे में बताया है । हमें स्पष्ट धारणा—यात्री बर्मे धारण के बारे में भी जानकारी मिलती है । अवसर सभी उपकरण जो बाद में आये, वे इसी पुन में पाए जा चुके थे । भारतीय आलुमना में आठवीं सदी सवीं सदी सदीसहस्रों तथा अन्य कार्यों के लिए उत्प्रेरणापूर्व भी । यह सक्षिपता 12वीं सदी तक चलती रही जब तक 'रसायन' की संश्लेषित नहीं कर लिया गया । यह पुस्तक पहली बार रसायनशास्त्र या रासायनिक उपयोगशास्त्र में बारे में बताती है जो रसायनशास्त्र का अध्ययन बॉटिर की तरह था । इस बॉटिर का केन्द्रीय वैकता बारे से बला बीरेज (एल बीरेज) था । यह उत्प्रेरणाशास्त्र में रखी जाने वाली बरुओं—विभिन्नशीत अक्षिप वाली आलुम, बलालुम, कवच, ईजन, धारण और मुरा, मिट्टी, मिट्टी

के पास, दुलाई, बाँस या लोहे की लकी, मूषा तथा बंसी में आसवन तथा निषकाकर औस बनाने की क्रिया वाली युक्तियों के बारे में विस्तृत जानकारी देती है। यह पुटी विशेषकर कनोटाकनपुर तथा सामान्य कवासी योग के बारे में बताती है जिसमें मूषा में राख बनाने या बने करके तथा बस्तुओं का विशेष प्राप्त करने के बारे में बताया गया है। बने अपनी पुस्तक 'आचीन भारत में रसायन का विकास' में लोहा, लौहा, लौहा, लौहा, लौहा, लौहा, लौहा तथा अन्य बस्तुओं का उपयोग करते हुए रसायन में बताई गयी की कवासी क्रियाओं का परीक्षण किया है।

हुनरवा देव 300 ई.पू. ही कीच के परिचित हो चुका था। कीचिय बंद में कीचिय रत्नों का वर्णन है की सम्भवतः कीच के बने थे। प्राथमिक चारवासी कीच कट्टारों (क्रिस्टलों) से प्राप्त किया गया। हुनरवा देव के पुराने कीच कवासी तथा लौहा के लोहे के प्राप्त किये गये हैं। 13वीं शती के चलोवर हल 'रस प्रकाश मुद्राकर' में कीच के वर्णन (कीच बटी और कापमल पाथ) का उल्लेख है। चलोवर ने 40 बंसी तथा मूषा की लकी दी है। बाद में कीच के वर्णन आधुनिकताओं और रासायनिक प्रयोगशालाओं के लेखी से उपयोग होने लगे।

हुनरवा देव इस बात का कोई जवाब नहीं है कि भारत में सर्वप्रथम चार और लौहा की क्रियाएँ कवासी। चरक में इसका उल्लेख सर्वप्रथम है। मानव चार के आधुनिकता में इसकी महत्व दिया गया। रसविद्या में इसके एक एक मूषा मूषा आ गया। औषधीय जलापी में भी कई तकनीक विकसित हो गयी। रस प्रकाशमुद्रा में आसवन, राख या लूना विमीन, लौहाकर लोहा कवासी की युक्तियों की लकी दी है। इस बंद में सर पी.सी. राय बहुत सचि रखते थे। इसमें अनेक प्रकार की लूनाओं का वर्णन है। इसमें चार प्रकार की कोटिकाओं, लकी के बवासे तथा उनके दुर्लभकरण के विषय में विस्तृत जानकारी दी गयी है। लौहा की प्रकार के पुटी का वर्णन है। चार के लक्ष 15 प्रकार के लौहा (लौहा) इसके लक्ष है कि इस लौहा के लक्ष किन्हीं तरह के प्रयोग हुए। 25 प्रकार के चार वर्णन, किन्हीं रस कवासी कवासी हैं, का विस्तृत विवरण आसवनप्रयोग है।

अनेक विविध पुटी के कारण चार की लोच के दुर्लभता जगत में तीन कवासी लकी : (1) यह लौहा लौहा की लोच में कवासी में महत्वता कवासी

(ii) इससे ऐसे नीचस्त्रीय उत्पन्न करनेवाले लोगों को जबरता तबाल करके तथा पीछों पर बिजब चढ़ाकर (iii) इससे मनुष्य आकाश में उड़ेगा। यह सामान्य विश्वास था कि 'विमान' या हवाई जहाज अपनी ईंधन-शक्ति द्वारा वायुमण्डल में उड़ान भरेंगे। वे यह कहना चाहेंगे कि इन तीनों में कोई भी झूठा साक्ष्य नहीं ही सभी परस्पर सब भी यह ज्ञान के सम्बन्ध में सहजक है। आज भी मनुष्य इन्हीं उद्देश्यों (अ) जल और समुद्र (आ) स्थलस्थ, तथा मृदु और पीछों के लुटकारा (इ) असीमित आकाश में निर्वाह पति के विमान में लया हुआ है।